इस अंक में

●सम्पादकीय 03
●उद्‌गार 04

साक्षात्कार

●रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' 09

कहानियाँ

●आम आदमी :
शैल अग्रवाल 13
●डोंट टेल टू आंद्रे :
सुमन सारस्वत 17
●गुल्ली डंडा और सियासतदारी :
डॉ. मनोज श्रीवास्तव 21
●उसका पत्र :
भावना सक्सेना 29

आलेख

●भारतीय एवं पाश्चात्य जीवन
मूल्यों की पुनर्परख कौन सी ज़मीन अपनी:
मो. आसिफ़ ख़ान
भानु चौहान 35

स्तंभ

●दृष्टिकोण:
डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री 31
●विश्व के आँचल से :
विजय शर्मा 47
●पुस्तक समीक्षा :
विजया सती 53
●पुस्तकें जो हमें मिलीं 56
●साहित्यिक समाचार 59
●भाषान्तर :
रमेश शौनक 63
●नव अंकुर :
अमित लव 63
●अधेड़ उम्र में थामी क़लम:
अमिता रानी
राजकुमारी सिन्हा 65
●विलोम चित्र काव्यशाला 66
●चित्र काव्यशाला 66

हिन्दी चेतना

(हिन्दी प्रचारिणी सभा कैनेडा की त्रैमासिक पत्रिका)
Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna
ID No. 84016 0410 RR0001
वर्ष : १४, अंक : ५३
जनवरी-मार्च २०१२
मूल्य : ५ डॉलर (5$)

ग़ज़लें

●देवी नागरानी 39
●नीरज गोस्वामी 39
●राजीव भरोल 39

लघुकथाएँ

●जीजिविषा
दीपक मशाल 41
●विवशता
सुमन कुमार घई 41
●बूढ़ा रिक्शेवाला
डॉ. श्यामसुन्दर दीप्ति 42

कविताएँ

●सम्बंध अंजाना : डॉ. अनीता कपूर 43
●एक और साल : पूर्णिमा वर्मन 43
●गाँव से शहर : रमेश मित्तल 43
●कैसे पूछ पाओगे : पंकज त्रिवेदी 44
●भू-स्तवन : प्रतिभा सक्सेना 44
●खुदकुशी : दिपाली सांगवान 44
●हमारा दौर : जितेन्द्र जौहर 45
●तुम्हारे नाम : रश्मि प्रभा 45
●बँटवारा : स्वर्ण ज्योति 45
●ताँका : डॉ. भावना कुँअर 46
●ताँका : डॉ. हरदीप कौर संधु 46

आख़िरी पन्ना

●सुधा ओम ढींगरा 68

'हिन्दी चेतना' सभी लेखकों का स्वागत करती है कि आप अपनी रचनाएँ प्रकाशन हेतु हमें भेजें । सम्पादकीय मण्डल की इच्छा है कि 'हिन्दी चेतना' साहित्य की एक पूर्ण रूप से संतुलित पत्रिका हो, अर्थात साहित्य के सभी पक्षों का संतुलन । एक साहित्यिक पत्रिका में आलेख, कविता और कहानियों का उचित संतुलन होना आवश्यक है, ताकि हर वर्ग के पाठक वर्ग पढ़ने का आनंद प्राप्त कर सकें । इसीलिये हम सभी लेखकों को आमंत्रित करते हैं कि हमें अपनी मौलिक रचनाएँ ही भेजें । अगले अंक के लिये अपनी रचनाएँ शीघ्रातिशीघ्र भेज दें । अगर संभव हो तो अपना चित्र भी साथ अवश्य भेजें ।

रचनाएँ भेजते हुए निम्नलिखित नियमों का ध्यान रखें :

1. *हिन्दी चेतना अप्रैल, जुलाई, अक्टूबर तथा जनवरी में प्रकाशित होगी ।*
2. *प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा ।*
3. *पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर लिखित रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी ।*
4. *रचना के स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा ।*
5. *प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जायेगा ।*
6. *पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं । संपादक मंडल तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है ।*

संरक्षक एवं प्रमुख सम्पादक
श्याम त्रिपाठी, कैनेडा

सम्पादक
सुधा ओम ढींगरा, अमेरिका

सह-सम्पादक
रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', भारत
पंकज सुबीर, भारत
अभिनव शुक्ल, अमेरिका

परामर्श मंडल
पदमश्री विजय चोपड़ा, भारत
(मुख्य संपादक, पंजाब केसरी पत्र समूह)
कमल किशोर गोयनका, भारत
पूर्णिमा वर्मन, शारजाह
(संपादक, अभिव्यक्ति- अनुभूति)
अफ़रोज़ ताज, अमेरिका
(प्रोफ़ेसर-यूनिवर्सिटी ऑफ़ नॉर्थ कैरोलाईना, चैपल हिल)
निर्मला आदेश, कैनेडा
विजय माथुर, कैनेडा

सहयोगी
सरोज सोनी, कैनेडा
राज महेश्वरी, कैनेडा
श्रीनाथ द्विवेदी, कैनेडा

विदेश प्रतिनिधि
आकांक्षा यादव
अंडमान- निकोबार
चाँद शुक्ला 'हदियाबादी'
डेनमार्क
दीपक 'मशाल' यूके
अमित सिंह भारत

कहीं रेतीले मरुथल में भीगा सावन छुप कर बैठा है,
कहीं युग पर जमी हुई हिम की पर्तों की हिम्मत टूट रही,
कहीं जगती आँखों के सपनों को सच करने की ताकत है,
कहीं दूर देश की माटी में भाषा की कोंपल फूट रही,
मंजिल पाना है ध्येय अगर तो चलने का साहस रखो,
तारा बनने की इच्छा है तो जलने का साहस रखो।

-अभिनव शुक्ल

आवरण : अरविंद नराले
भीतरी छायाचित्र : राजेंद्र शर्मा बब्बल
कम्प्यूटर सज्जा : सनी गोस्वामी

Hindi Chetna is a literary magazine published quarterly in Toronto, Ontario under the editorship of Mr. ShiamTtripathi. Hindi Chetna aims to promote the Hindi language, Indian culture and the rich heritage of India to our children growing in the Canadian society. It focuses on Hindi Literature and encourages creative writers, young and old, in North America to write for the magazine. It serves to keep readers in touch with new trends in modern writing. Hindi Chetna has provided a forum for Hindi writers, poets, and readers to maintain communication with each other through the magazine. It has brought many local and international writers together to foster the spirit of friendship and harmony.

HINDI CHETNA
6 Larksmere Court, Markham, Ontario, L3R 3R1
Phone : (905) 475-7165, Fax : (905) 475-8667
e-mail : hindichetna@yahoo.ca
Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna
ID No. 84016 0410 RR0001

प्रेम जनमेजय अंक आप सब के हाथों में पहुँच चुका है । भारत व अन्य देशों से आईं इस अंक पर प्रतिक्रियाएँ (मेल व इमेल से) हमें प्राप्त हुईं । संख्या में अधिक होने के कारण हम उन्हें अगले कई अंकों तक प्रकाशित करते रहेंगे । हमें खेद है, हम अपने पृष्ठों की सीमाओं की विवशता के कारण कई लेख इस अंक में प्रकाशित नहीं कर पाए । बहुत से पाठकों की माँग आई है कि इसे पुस्तक का रूप दिया जाना चाहिए, ताकि दीर्घकाल तक शोध कर्त्ता इससे लाभान्वित हो सकें । इस दिशा में सोचा जा सकता है ।

पाठकों! आप को यह जानकर हर्ष होगा कि 'हिन्दी चेतना' के प्रेम जनमेजय विशेषांक का कैनेडा और भारत दोनों जगह विमोचन हुआ । कैनेडा में रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' ने ३ दिसम्बर २०११ को हिंदी प्रचारिणी सभा एवं हिंदी मार्खम बुक क्लब की ओर से मिलिकन मिल्स लाइब्रेरी में और ९ दिसम्बर को भारत में डॉ. नामवर सिंह, प्रभाकर श्रोत्रिय एवं अर्चना वर्मा ने हिन्दी साहित्य अकादेमी में पत्रिका का विमोचन किया । इन समारोहों की रिपोर्ट आप पत्रिका के साहित्यिक समाचार के पृष्ठों पर पढ़ सकते हैं ।

'हिंदी चेतना' के इस अंक में डॉ. रविन्द्र अग्निहोत्री का एक आलेख छपा है कि कैसे एक यहूदी ने मृतप्राय: 'हिब्रू' भाषा को लुप्त होने से बचाया ही नहीं बल्कि उसे जीवित कर पूरी दुनिया में फैले यहूदियों की भाषा बनाया । इसे पढ़ कर महसूस हुआ कि हमारी भाषा तो अभी ज़िंदा है, हम अपनी जीवित भाषा को क्यों मार रहे हैं..? हम भारतवासियों को और विशेषकर हिन्दी भाषियों को हिन्दी भाषा के प्रति संवेदन शील हो कर अपनी भाषा पर गर्व करना चाहिए ।

इसके विपरीत भारत में हिंदी के प्रति उदासीनता देखकर मन भर जाता है । भीतर कहीं बेचैनी महसूस करता हूँ कि किस तरह देसी अंग्रेज़ों को हिन्दी भाषा से जोड़ूँ, इस भाषा का महत्त्व बताऊँ । विदेश की धरती पर जो भारतवासी अपने जीविकोपार्जन के लिए बसे हुए हैं, स्वदेश की भाषा, संस्कृति, परम्पराएँ, जीवन दर्शन व मूल्य, कला, साहित्य पर बहुत ध्यान देते हैं और तन, मन, धन से अपनी भाषा को जीवित रखने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं । बच्चों को हिंदी सिखाने के लिए दूर- दूर स्कूलों और समुदायों के पास जाते हैं और अब तो लगभग हर विश्वविद्यालय, स्कूल और कालेज में पैतृक भाषा का अध्ययन हो रहा है । भाषा एक ऐसी शक्ति है, जिससे बढ़कर कोई और शक्ति नहीं है । इसका साक्षात् उदाहरण अंग्रेज़ी भाषा है जिसके बल पर ३०० वर्षों तक अंग्रेज़ों ने हम पर शासन किया और जाने के बाद भी अपनी भाषा का जादू छोड़ गये । ६४ वर्ष निकल गये, लेकिन हम हिंदी को अपनी राष्ट्र भाषा नहीं बना पाए । यह एक खेद जनक विषय है कि गाँधीवादी भी गाँधी जी की बातों को भूल गये । शिक्षा का सर्वनाश हो रहा है । यही राग अलापा जा रहा है कि हिंदी भाषा में विज्ञान, तकनीकी विषयों पर पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं, क्या करें, अंग्रेज़ी में शिक्षा अनिवार्य है । सब ने अपनी आँखों पर अंग्रेज़ी की पट्टी बाँध ली है । हर व्यक्ति अंग्रेज़ी के पीछे पागल है । साहित्य अकादमियों में विराजमान पदाधिकारी सरकार की नीतियों में 'हाँ' में 'हाँ' मिलाए जा रहे हैं और भाषा को नष्ट करने वाली लॉबी का साथ दे रहे हैं । मैं बच्चों को कई भाषाएँ सिखाने के हक़ में हूँ और अंग्रेज़ी का विरोधी नहीं हूँ, पर अंग्रेज़ी हिन्दी का स्थान ले और हिन्दी पिछड़ती जाए, ऐसा भी नहीं चाहता । और ऐसा करने में हिन्दी भाषी ही शमिल हों, तो कष्ट और भी बढ़ जाता है । क्या कभी हिन्दी प्रेमी जागृत होंगे और एकजुट होकर हिंदी के लिए आवाज़ उठाएंगे ? उस दिन के इंतज़ार में.....।

नव वर्ष आप सब के लिए सुख समृद्धि लाए,
मंगल कामनाओं के साथ.....

आपका

श्याम त्रिपाठी

हिन्दी चेतना को पढ़िये, पता है :
http://hindi-chetna.blogspot.com

हिन्दी चेतना की समीक्षा अवश्य देखें :
http://kathachakra.blogspot.com

हिन्दी चेतना को आप
ऑनलाइन भी पढ़ सकते हैं :
Visit our Web Site :
http://www.vibhom.com/hindi chetna.html
पर जाकर

उद्‌गार

(पाठकों ! प्रेम जनमेजय विशेषांक की वृहता को देखते हुए हमने अपने सभी स्थाई स्तम्भ रोक लिए थे । इससे पाती स्तम्भ में इतने पत्र इकट्ठे हो गए हैं कि नव वर्ष में नए अंकों के पत्रों के साथ -साथ पिछले वर्ष के अंकों की चर्चा भी होती रहेगी—सम्पादक)

आपने इतनी सुन्दर पत्रिका 'हिन्दी चेतना' के जुलाई- सितम्बर २०११अंक की पीडीएफ़ फाईल भेजी है, कि उसे सही तरह से अभिव्यक्त करने के लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं । महत्त्वपूर्ण बात ये है कि हिन्दुस्तान के तथाकथित बड़ी कही जाने वाली साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादक, जिन्हें सब प्रकार के साधन, सुविधाएँ उपलब्ध हैं वे इस स्तर की, इस मेयार की पत्रिका नहीं निकाल पाते हैं और आप लोग हिन्दुस्तान से हज़ारों मील दूर बैठ कर ये कमाल कर रहे हैं, आपका ये करिश्मा मुझे हैरत में डालने के लिये काफ़ी है ।

अब मैं सोच रहा हूँ कि मुझे आपको कुछ और ग़ज़लें भेजनी चाहिए थीं पर चूँकि आपने ग़ज़ल भेजने का आदेश दिया था इसलिए एक ग़ज़ल ही भेजी थी । यूँ तो हिन्दुस्तान के हर बड़े कहे जाने वाले पत्र- पत्रिकाओं में विगत 30 वर्षों से मेरी ग़ज़लें छप रहीं हैं पर जो ख़ुशी मुझे 'हिन्दी चेतना' में छपने पर मिली है, वो कुछ अलग ही है ।

आपकी पत्रिका के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व के हिन्दी प्रेमियों का अभिनन्दन, वंदन, अभिवादन और धन्यवाद करना चाहता हूँ जो कि 'हिन्दी चेतना' और इस जैसी अन्य पत्रिकाएँ पढ़ते हैं और हिन्दी की पताका को सम्पूर्ण विश्व में फहरा रहे हैं ।

आपको और 'हिन्दी चेतना' पत्रिका के पूरे परिवार को बहुत-बहुत बधाई, तथा धन्यवाद ।

नित्यानंद 'तुषार'
गाजियाबाद ,
(उ.प्र.)

'हिंदी चेतना' का जुलाई-सितम्बर २०११ अंक देखा । सम्पादकीय सटीक है । सच में हिंदी की दुरावस्था के लिये स्वार्थपरता ज़िम्मेदार है । ऐसे में आपका शुभ प्रयास वंदनीय है । इस अंक में पंकज सुबीर व ज़किया ज़ुबैरी की सशक्त कहानी पढ़ने को मिली । सुधा ओम ढींगरा, ओंकारेश्वर पांडेय के आलेख सटीक हैं । कविता, ग़ज़ल, लघुकथा , बाल साहित्य सभी कुछ से शोभित पत्रिका बहुत सार्थक है। अधेड़ उम्र में थामी कलम स्तम्भ बहुत अभिनव और सराहनीय है।

पुनः साधुवाद, शुभकामनाएँ ।

डॉ. मीनाक्षी स्वामी (भारत)

अक्तूबर-दिसम्बर २०११ अंक बहुत शानदार एवम जानदार है ! डॉ. प्रेम जनमेजय को बधाई ! इस अंक में पंकज सुबीर, मनोज श्रीवास्तव, प्रदीप पन्त, हरीश नवल, सूरज प्रकाश, अशोक चक्रधर, मनोहर पुरी, सूर्यबाला, तरसेम गुजराल, यज्ञ शर्मा, नरेंद्र कोहली, उषा राजे सक्सेना, अनिल जोशी, गिरीश पंकज, ज्ञान चतुर्वेदी, महेश दर्पण, अजय अनुरागी, प्रताप सहगल, हरि शंकर आदेश, अविनाश वाचस्पति, राधेश्याम तिवारी, अजय नावरिया, वेदप्रकाश अमिताभ, लालित्य ललित [ललित मंडोरा] तथा अमित कुमार सिंह के संस्मरण तथा आलेख बहुत प्रभाव छोड़ते हैं ! सबको बधाई ! संपादक मंडल इस सारस्वत प्रयास हेतु साधुवाद का पात्र है !

ओम पुरोहित 'कागद' (भारत)

(हिन्दी चेतना' के जुलाई- सितम्बर २०११अंक में छपे हरिंदर कौर सिंह के पत्र के सन्दर्भ में)

'हिंदी चेतना' मैगज़ीन का जुलाई अंक भेजने का बहुत- बहुत धन्यवाद । कहानी ''वो एक पल'' के प्रति पाठकों के विचार पढ़ कर बहुत अच्छा लगा। ब्रिटेन के महान कहानीकार तेजेंद्र शर्मा जी का मैं आदर करती हूं। वह एक बहुत ही बड़े एवं अनुभवी कहानीकार हैं। उनकी तरह लिखने की तो मैं जुर्रत भी नहीं कर सकती। फिर भी यदि मेरी कहानी में पांच प्रतिशत भी कोई ऐसी चीज़ सामने आई है तो मेरे लिये यह बहुत ही गर्व की बात है। एक बार फिर मैं सब पाठकों का दिल से आभार प्रकट करते हुए धन्यवाद करती हूँ । जब तक उनका प्यार मिलता रहेगा यह कलम चलती रहेगी।

नीना पॉल (यू.के)

मील का पत्थर

अचानक ''हिंदी चेतना'' की जुलाई-सितम्बर २०११ की प्रिंट -प्रति मिली, तो आनंद से भर गया । आपने याद किया । इस लायक समझा । नेट पर भी इस पत्रिका को देख चुका हूँ । लेकिन प्रिंट-रूप में देखने का सुख अलग है । पत्रिका हिन्दी का प्रतिनिधित्व करती है । चेतना जगा रही है । भारत से बाहर रहने वाले अनेक भारतीय-लेखक इस पत्रिका के माध्यम से हम तक पहुँच रहे हैं, और हिंदी के लेखक भी मंच पा रहे हैं, यह देख कर अच्छा लगा । आप के सद्‌प्रयासों से हिंदी का एक पुल बन रहा है । यह बड़ा काम है । इसकी जितनी भी प्रशंसा की जाये, कम है । अगला अंक प्रेम जनमेजय पर है । वे हिंदी के बड़े व्यंग्यकार है । उनसे हम लोगों ने बहुत-कुछ सीखा है, सीख रहे हैं । प्रेमजी वाले विशेषांक की भी प्रतीक्षा रहेगी ।

जिसकी प्रतीक्षा थी, अक्तूबर-दिसम्बर २०११ प्रेम जनमेजय विशेषांक मिला । अद्भुत.. कल्पना से भी ज़्यादा सुंदर विशेषांक.. फिलहाल यही निकल रहा है मुँह से । सरसरी तौर विशेषांक देख कर प्रतिक्रिया दे रहा हूँ । नयनाभिराम साज-सज्जा, चुनी हुई आत्मीय रचनाएँ, मनोहारी प्रस्तुति, इन सबने प्रेमजी के व्यक्तित्व को नए सिरे से परिभाषित करने की दिशा में बड़ा काम कर दिया है । इस अंक की भारत में चर्चा रहेगी । दो-चार दिन में पूरा अंक पढ़ लूंगा । फिलहाल मन नहीं माना, इतने प्यारे विशेषांक के लिये दिल से बधाई दे रहा हूँ । यह अंक मील का पत्थर साबित होगा, इसमें दो राय नहीं । 'हिंदी चेतना' के इस पहल से 'व्यंग्य-चेतना' को और बल मिलेगा ।

गिरीश पंकज (भारत)

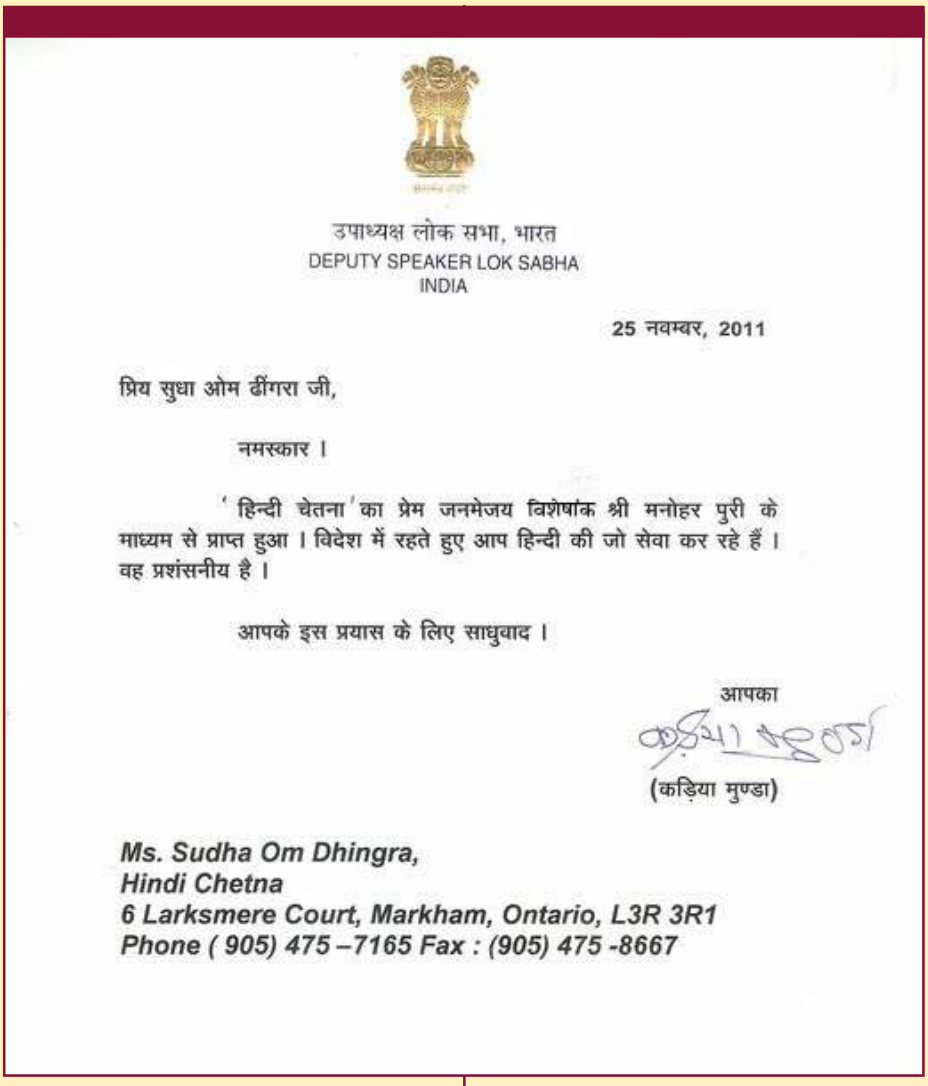

उपाध्यक्ष लोक सभा, भारत
DEPUTY SPEAKER LOK SABHA
INDIA

25 नवम्बर, 2011

प्रिय सुधा ओम ढींगरा जी,

नमस्कार ।

'हिन्दी चेतना' का प्रेम जनमेजय विशेषांक श्री मनोहर पुरी के माध्यम से प्राप्त हुआ । विदेश में रहते हुए आप हिन्दी की जो सेवा कर रहे हैं । वह प्रशंसनीय है ।

आपके इस प्रयास के लिए साधुवाद ।

आपका

(कड़िया मुण्डा)

Ms. Sudha Om Dhingra,
Hindi Chetna
6 Larksmere Court, Markham, Ontario, L3R 3R1
Phone (905) 475 –7165 Fax : (905) 475 -8667

'हिन्दी चेतना' के जुलाई-सितम्बर २०११ अंक की पीडीऍफ मिली । पत्रिका पढ़ी, अत्यंत सराहनीय है। पंकज सुबीर जी की भोपाल त्रासदी की याद दिलाती कहानी आँखों को नम कर गयी और याद हो आए वे दो बहुत लंबे लगने वाले कठिन दिन जब पूरा परिवार मेरे पिता के लिए चिंतित था। वह उस समय भोपाल में नियुक्त थे, लेकिन ईश्वर की कृपा थी कि जाने क्यूँ उन्होंने नियत न होने पर भी कुछ दिन के लिए दिल्ली आने का निश्चय किया था और उसी रात्रि को रेल में बैठे थे। कितनी यादें ताज़ा हो गईं! सम्पूर्ण पत्रिका एक ही बार में बैठकर पढ़ जाने को मन था पर समयाभाव से ऐसा कर न सकी ।

भावना सक्सेना
(सूरीनाम)

इस बार फिर 'हिन्दी चेतना' ने चौंका दिया । जुलाई-सितंबर २०११ अंक साहित्यिक पत्रिकाओं में एक अद्भुत कलेवर और विभिन्न रंगों की फ्लेवर ले कर आया । पंकज सुबीर की फ़रिश्ता, ज़किया ज़ुबेरी की कच्चा गोश्त, अर्चना पेन्यूली की केतलीना बेहतरीन कहानियाँ हैं । पंकज सुबीर की बहुत सी कहानियाँ पढ़ीं हैं, इंसानियत सबसे बड़ा धर्म है, इनकी कई कहानियों में ऐसी झलक मिली है । कविताएँ, ग़ज़लें, लघुकथाएँ क्या कहने..? 'अमेरिका के कथा साहित्य में अमेरिकी परिवेश' पढ़ने के उपरांत पहली बार पता चला कि अमेरिका में इतना कुछ लिखा जा रहा है, और हम अमेरिका के साहित्य प्रेमी ही नहीं जानते, भारत वालों से गिला किस बात का । आप को ऐसे लेखों की संख्या बढ़ानी चाहिये ताकि पूरी दुनिया विदेशों में लिखे जा रहे साहित्य से परिचित हो जाए । ओंकारेश्वर पांडेय का लेख 'वैश्विक मुद्दों से जोड़ें हिन्दी को' कई प्रश्न उठाता एक सोचनीय लेख है ।

अक्तूबर -दिसम्बर २०११ प्रेमजनमेजय विशेषांक मिला । एक भारी भरकम पत्रिका पुस्तक का रूप लिए हाथ में आई । पत्रिका की अनूठी साज -सज्जा और सामग्री विशेषांक के साथ पूरा न्याय कर रही है । बड़े -बड़े नामों की सूची देख कर पसीना छूट गया । पर सारा पसीना सूख गया जब एक बैठक में सब पढ़ गया । व्यंग्य को बेहद गंभीरता से लिया गया है और प्रेम जनमेजय के माध्यम से इसका भिन्न स्वरूप समझने को मिला । पंकज के इंटरव्यू ने व्यंग्य विधा को लेकर कई प्रश्नों को उठाया और उनका समाधान करवाया । एक संग्रहनीय अंक बना है । हिन्दी चेतना की पूरी टीम को बहुत -बहुत बधाई ।

अनूप बत्रा (अमेरिका)

अक्तूबर-दिसम्बर २०११ प्रेम जनमेजय विशेषांक मिला । इस अंक के संयोजन की सूचना पहले ही मिल गई थी इसलिए उसकी प्रतीक्षा भी थी । अब अंक आ गया तो हड़बड़ी में ही सही, पूरा का पूरा देख गया । एक अच्छी खासी संग्रहणीय किताब के रूप में बन गया है । बहुत बहुत बधाई । मित्र साहित्यकारों के संस्मरण प्रेम जनमेजय के ...बहुमुखी व्यक्तित्व की कई परतें खोलते हैं । डॉ. नवल के संस्मरण में मुझे कुछ ज़्यादा ही आत्मीयता की झलक मिली । रचनाओं पर कम बात होती है और व्यक्ति पर ज़्यादा । इस लिहाज से डॉ. प्रताप सहगल का प्रेम जनमेजय के व्यंग्य नाटकों पर लेख सचमुच महत्वपूर्ण है । साक्षात्कार अच्छे हैं पर और भी अच्छे हो सकते थे । छः दशकों (या कहिये पाँच दशकों) के संघर्ष और उपलब्धियों को समेटना सचमुच जीवट का काम है । सुश्री सुधा ओम ढींगरा ने यह जिम्मा उठाया इसके लिए उनका साधुवाद । और इसलिए भी साधुवाद कि उन्होंने यह अंक डिजिटल रूप में हमें मुफ्त में पढ़वाया ।

रमेश तैलंग (भारत)

'हिन्दी चेतना' के जुलाई-सितम्बर २०११ अंक अपनी सुन्दरता और बहुविध सामग्री लिए अभी अभी देखा -सुधा जी का आलेख ही सबसे पहले पढ़ा है ।'अमेरिका के कथा साहित्य मे अमरीकी परिवेश' - अंतिम पेराग्राफ बहुत पसंद आया- 'भारत में जिसे आत्म विज्ञापन और आत्म -प्रदर्शन कहते हैं, वह अमरीका में स्वयं को उद्धृत करना कहलाता है ।' बिलकुल सही विश्लेषण किया है आपने । भारत और पश्चिम के देशों के बीच की सांस्कृतिक खाई आजकल तीव्र गति से बाज़ारवाद के वैश्विक प्रचालन ने समाप्त प्राय कर दी है । आगामी वर्षों में हम आशा करें कि, सृजन को विभाजित न करते हुए हर रचनाकार को , रचना के द्वारा ही पहचाना जाएगा । भविष्य के लिए मेरी शुभकामनाएँ और समस्त 'हिन्दी चेतना' सदस्य मंडल को सस्नेह नमस्ते ।

- लावण्या शाह (अमेरिका)

आपका ''हिंदी चेतना'' का अंक मिला, जो प्रिय लेखक व्यंग्य कार प्रेम जनमेजय जी को समर्पित था । आप लोग भारतीय लेखकों पर बहुत अच्छे अंक निकालने में माहिर हैं और इसके लिए बधाई के पात्र भी हैं । प्रेम जनमेजय जी के साथ उठने-बैठने के मुझे भी कई अवसर मिले हैं । देश में भी विदेश में भी । मारीशस और लन्दन में संपन्न विश्व हिंदी सम्मेलनों में भी कुछ लम्हे साथ गुज़ारे । मारीशस में विद्या निवास मिश्र जी भी साथ थे तो लन्दन में नामवर सिंह और कमलेश्वर जी और अन्य लेखक मित्र थे । आपको तथा हिंदी चेतना परिवार को बहुत साधुवाद क्योंकि कोई विशेषांक निकालना आसान नहीं होता । नार्वे में २३ वर्षों से स्पाइल-दर्पण पत्रिका से जुड़ा हूँ । निरंतर पत्रिका निकालना वह प्रवासी पत्रिका जहाँ हिंदी का बोलबाला नहीं है, बहुत दुष्कर होता है । आज जब नार्वे में पिछले ६ वर्षों से स्पाइल-दर्पण के अतिरिक्त कोई अन्य हिंदी की पत्रिका नहीं निकलती तब दायित्व और भी बढ़ जाता है ।

शुभकामनाओं सहित

सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक'

संपादक, स्पाइल-दर्पण

'हिंदी चेतना' का जुलाई-सितंबर २०११ का अंक मिला । इस अंक के सम्पादकीय में श्याम त्रिपाठी जी ने कुछ परस्पर विरोधी विचार व्यक्त किए हैं। एक ओर वे कहते हैं कि इस पत्रिका के लिए लेखों की बाढ़ आई रहती है जो इस बात का द्योतक है कि हिंदी के रचनाकार सक्रिय हैं और अपना लेखन औरों तक पहुँचाना चाहते हैं आपकी इस प्रतिष्ठित पत्रिका के माध्यम से । यह स्वाभाविक है कि पराई भाषा भी पराई नार की तरह आकर्षित करती है तो लोग अंग्रज़ी के प्रति अधिक खिंचे होंगे । परंतु समस्याएँ हर भाषा की अपनी-अपनी होती हैं और हर भाषा के लेखकों में ईर्ष्या-द्वेष की अकूट संभावनाएँ भी। हर भाषा का इतिहास यही बताएगा कि हर रचनाकार अपने को दूसरे से बीसा समझता है। इससे साहित्य में स्पर्धा ही रही । हाँ, यदि यह स्पर्धा स्वस्थ हो तो साहित्य में उत्कर्ष योगदान दिया जा सकता है। अंक की कहानियों और कविताओं का सुंदर व स्तरीय चयन हुआ है जिसके लिए संपादक मंडल बधाई का पात्र है।

चंद्र मौलेश्वर

सिकंदराबाद (भारत)

सर्वप्रथम तो हिंदी चेतना के अप्रतिम जुलाई-सितंबर २०११ अंक के लिए आपको हार्दिक बधाई । हिंदी चेतना के मुखपृष्ठ के साथ-साथ हर पृष्ठ इतना ख़ूबसूरत है कि दिल को सुकून मिलता है देखकर, इसके साथ ही जिन रचनाकारों की रचनाएँ इस अंक में प्रकाशित हुई हैं, इस पावन मंच की शोभा में इज़ाफा कर रहे हैं । उन सबको भी मेरा नमन ! शायद देश में रहने वाले भी इतनी शिद्दत से हिंदी और हिंदी साहित्य की सेवा की भावना नहीं रखते, किन्तु आपका ये सफलतम और वन्दनीय प्रयास उन सभी व्यक्तियों और संस्थाओं के लिए निश्चिन्त रूप से प्रेरणादाई है । बहुत कुछ है कहने के लिए पर शब्द अपनी पराकाष्ठा तक आकर जैसे ठहर गए हैं...सिर्फ इतना ही कह पाऊँगा कि बस हृदय में जहाँ कहीं मेरा 'मैं' है, वहाँ से आपको और आपके इस पावन कर्म को नमन करता हूँ, वंदन करता हूँ...

नरेन्द्र व्यास, राजस्थान (भारत)

'हिन्दी चेतना'' का जुलाई- सितम्बर २०११ मुद्रित अंक प्राप्त हुआ, मैं अभी भारत में हूँ इसलिये अब मँगा सकी हूँ । सब प्रकार से संतुलित और सुरुचिपूर्ण है, आपके अध्यवसाय और लगन को नमन ! मुद्रित प्रति हेतु आभारी हूँ-उत्तर-कथा की समीक्षा इतनी अच्छी तरह प्रकाशित करने के लिये कृतज्ञ हूँ ।

शुभ-कामनाओं सहित,

प्रतिभा सक्सेना (अमेरिका)

आपने प्रिय भाई प्रेम जी पर इतना सुन्दर अंक निकला है कि इसके लिए बहुत अच्छा शब्द बहुत छोटा है । इस अंक पर बाकायदा बात होनी चाहिए ।

महेश दर्पण (भारत)

प्रेम जनमेजय पर केन्द्रित अंक अत्यंत सारगर्भित और सूचनाप्रद है । नि:संदेह! यह अंक हिन्दी साहित्य में रेखांकित किया जाएगा । प्रेम जनमेजय जी के उन अछूते पहलुओं पर सांगोपांग निगाह डाली गई है, जिनसे उक्त व्यंग्यकार के पाठक विरले ही परिचित रहे होंगे । उत्कृष्ट सम्पादन के लिए बधाई स्वीकारें!

आपका,

मनोज श्रीवास्तव (भारत)

अक्तूबर -दिसम्बर २०११अंक बहुत सुँदर और प्रेम जी पर विविध सामग्रियों से भरपूर है । आपने उत्कृष्ट लेखकों के लेख लिए हैं साथ में मुझे भी स्थान दिया है । आपका परिश्रम सार्थक हुआ । बहुत-बहुत बधाई ।

उषा राजे सक्सेना

(यू.के)

अक्तूबर-दिसम्बर २०११ प्रेम जनमेजय विशेषांक मिला । आपका यह प्रयास नि:संदेह सराहनीय है । इतना सामान आपने कैसे जोड़ लिया ? प्रस्तुति भी सुगठित एवं सौजन्यपूर्ण है । सारा तो फिर कभी धीरे- धीरे पढ़ पाऊँगी । धन्यवाद।

कादम्बरी मेहरा

(यू.के)

'प्रेम जनमेजय विशेषांक' सदैव याद किया जाएगा

'हिंदी चेतना', कैनेडा का 'प्रेम जनमेजय विशेषांक' मिला, हार्दिक प्रसन्नता हुई । दूर-देश से प्रकाशित यह पत्रिका भारत के हिंदी लेखकों को अपने साथ लेकर चलना चाहती है, यह स्वागत योग्य कार्य है । इससे पूर्व प्रेमचन्द, नरेन्द्र कोहली, मदनमोहन मालवीय आदि पर भी, हिंदी चेतना, ने विशेषांक निकाले हैं और इस सद्भाव का सर्वत्र स्वागत हुआ है । हिंदी के वर्तमान व्यंग्यकारों में से 'प्रेम जनमेजय' पर विशेषांक निकालने का निर्णय सर्वथा उपयुक्त है, क्योंकि वे व्यंग्य-त्रयी के परलोक गमन के बाद हिंदी-व्यंग्य के शिखर पर विराजमान हैं । हिंदी में कई प्रतिष्ठित व्यंग्यकार हैं, किन्तु प्रेम जनमेजय व्यंग्य के लिए पूर्णत: समर्पित हैं और वे व्यंग्य के जैसे पर्याय बन गये हैं । प्रेम जनमेजय ने 'व्यंग्य' पर 'व्यंग्य यात्रा' जैसी पत्रिका निकाल कर व्यंग्य के लिए अपना सब कुछ समर्पित कर दिया है और इस प्रकार हिंदी व्यंग्य के विकास तथा उसे एक दिशा देने में अपने योगदान की मोहर लगा दी है । वे व्यंग्य की पुरानी, वर्तमान और नई पीढ़ी, सभी को व्यंग्य-यात्रा का पथिक बनाकर हिंदी में एक बड़ा व्यंग्य-परिवार निर्मित करने के साहित्य-कर्म में लगे हैं और अपनी निजी व्यंग्य रचनात्मकता को भी नई-नई रचनाओं से संजीवनी देते रहते हैं । हिंदी व्यंग्य में यह अनोखा और अनुपम अनुष्ठान है और 'हिंदी चेतना' ने उनकी इसी व्यंग्य निष्ठा, व्यंग्य-यज्ञ और व्यंग्य साम्राज्य के विस्तार के लिए उन पर विशेषांक निकालकर सम्मानित किया है । हिंदी में यदि, 'व्यंग्य-सम्राट' की कोई कल्पना हो तो प्रेम जनमेजय यदि अपनी व्यंग्य यात्रा में अपने पैरों से चलकर वहाँ पहुँच सकें तो मुझे प्रसन्नता होगी । 'हिंदी चेतना' के प्रमुख सम्पादक श्री श्याम त्रिपाठी, एवं सम्पादक सुश्री सुधा ओम ढींगरा को इस पवित्र कार्य के लिए हिंदी साहित्य एवं अपनी ओर से बधाई और अभिनन्दन । उनका यह 'प्रेम जनमेजय विशेषांक' सदैव याद किया जाएगा -विषय की मौलिकता, सामग्री एवं कलात्मक सुसज्जा के लिए ।

-डॉ. कमल किशोर गोयनका (भारत) kkgoyanka@gmail.com

अक्तूबर -दिसम्बर २०११ प्रेमजनमेजय विशेषांक मिला । इस ऐतिहासिक अंक के लिए आपको बहुत बहुत बधाई.... ।

ओंकारेश्वर पांडेय (भारत)

आपके इस संकल्प, समर्पण और साधना को शत-शत नमन...आप जैसे सुधी और समर्पित लोगों ने ही हिन्दी को एक भाषा के रूप में जीवित रखा है...आपकी ये यात्रा अनवरत जारी रहे...इसी मंगल कामना के साथ

शिवानी जोशी-चन्द्रकांत जोशी
हिन्दी मीडिया (मुम्बई)

'हिन्दी चेतना' का डॉ. प्रेम जनमेजय विशेषांक मिल गया है। दो बार इसे पूरा पलटकर देख भी गया हूँ। जैसा कि सुधा जी ने लिखा है—अंक की घोषणा के साथ ही कुछेक प्रतिक्रियाएँ आनी शुरू हो गयीं। यह स्वाभाविक ही था। प्रेम भाई जैसा निश्छल व्यक्तित्व अगर हाइट पायेगा तो छलियों का क्या होगा! आप और आपकी टीम नि:संदेह दृढ़ निश्चय के साथ संपन्न इस कार्य हेतु बधाई की पात्र है।

बलराम अग्रवाल (भारत)

विशेषांक, विषय, संपादक मंडल तथा सारे रचनाकारों को नमन जिनके प्रयत्न ने 'हिंदी चेतना' रूपी अनमोल धरोहर को साकार किया ।

रामकुमार वर्मा (राज्य सचिव)
छत्तीसगढ़ हिंदी साहित्य परिषद

प्रेम जनमेजय विशेषांक मिला । 'हिंदी चेतना' और 'व्यंग्य चेतना' का सम्मिश्रण ही कहूँगा मैं इसे। अंक मिला। तुरंत ही खोलकर बैठ गया हूँ। ऊपर से नीचे की ओर चल रहा हूँ। यह नहीं कि पहले अपना संस्मरण ही पढ़ लूँ। बेमिसाल अंक है। बेहतर बनाया गया है। आप सबका श्रम एक- एक अक्षर से ऊर्जा बिखेरता हुआ निराली आभा दे रहा है। प्रकाशित प्रति पढ़ने में जो आनंद आएगा, उसकी तो खैर कोई तुलना ही नहीं की जा सकती। फिर भी लगता है कि तब तक सब्र करना संभव नहीं रहेगा। विस्तार से प्रतिक्रिया बाद में। अभी बस इतना ही।

अविनाश वाचिस्पति (भारत)

''हिंदी चेतना'' की जुलाई-सितम्बर २०११ अंक मिला । पत्रिका के लिए धन्यवाद । सुखद आश्चर्य होता है कि उत्तरी अमेरिका से हिंदी पत्रिका प्रकाशित हो रही है । सभी सामग्री अच्छी व स्तरीय लगी । मगर केतलीना कहानी ने मन मोह लिया । शुरू से अंत तक कहानी ने बाँधे रखा । केतलीना, फरेरा और निर्मल कोहली का चरित्र काफी उभर कर आया है । अर्चनाजी को बधाई इतने अच्छे सर्जन के लिए ।

पत्रिका की कई रचनाओं द्वारा दुनिया की जानकारी मिलती है । विदेश से हिंदी में इतना उत्कर्ष सर्जन हो रहा है । आपको बधाई एवं शुभकामनाएँ ।

सरोजिनी नौटियाल
रुड़की, हरिद्वार ।

''हिंदी चेतना'' का प्रेम जनमेजय विशेषांक मिला । पढ़ कर कर अच्छा लगा । साहित्य में व्यंग्य साहित्य को मधुर बनाता है । विशेष कर जिसका उद्देश्य ध्यान आकृष्ट करने का भी हो तो वह परिपूर्ण विधा हुई । आगे भी आपकी पत्रिका बढ़े फले-फूले । इन्हीं कामनाओं के साथ...।

ओम लता अखौरी (अमेरिका)

मैंने आज ही 'हिन्दी चेतना' के जुलाई-सितम्बर २०११अंक देखा तथा उसे पढ़ा । इसमें प्रकाशित हर रचना उच्च कोटि की है । कविताओं एवं कहानियों ने विशेष रूप से प्रभावित किया है । यह मेरा पहला मौका था इस पत्रिका को देखने का । इतनी अच्छी पत्रिका पढ़वाने हेतु आप का आभार व्यक्त करता हूँ ।

अशोक आंद्रे (भारत)

'हिंदी चेतना' का जुलाई-सितम्बर २०११अंक भेजने के लिए आपका हार्दिक धन्यवाद । आपने हिन्दी चेतना में वाकई चेतना का संचार कर दिया है । बड़े - बड़े रचनाकारों के नाम देख कर आश्चर्यचकित हो रहा हूँ । ऐसी उच्चस्तरीय हिंदी पत्रिका विदेश में छपेगी । कभी सोचा भी नहीं था । आपके हाथ में जादू की छड़ी है । जो काम बड़े -बड़े सम्पादक नहीं कर सकते वह आपने कर दिखाया है ।

प्राण शर्मा (यू.के)

हिंदी चेतना – सभी तरह से अतिसुंदर है । विदेश में रहने वालों का हिंदी भाषा से इतना प्यार ! बधाई हो!

चन्द्र शेखर अगरवाल (मुम्बई)

'हिन्दी चेतना' हर बार एक दम नई लगती है । आप की अनुभवी और पारखी निग़ाहों से गुज़र कर सभी लेख, कविता, कहानियाँ संवर जाती हैं । आप की मेहनत को नमन । पत्रिका भिजवाने के लिए आभारी हूँ ।

रचना श्रीवास्तव (अमेरिका)

पत्रिका को पढ़ना शुरू किया तो पूरा पढ़ लेने पर ही रुक पाई । इस सामग्री को संजोने में जिस लगन और श्रम से आप जुटे होंगें, कल्पना करना मुश्किल नहीं । मुझे खुशी है कि ऐसी पत्रिका से मैं जुड़ पाई ।

सादर और शुभकामना सहित ।

विजया सती (हंगरी)

जुलाई-सितंबर २०११ अंक का काफ़ी हिस्सा मैंने पढ़ा । लेख अमेरिका के कथा साहित्य में अमेरिकी परिवेश काफ़ी जानकारी से भरपूर है । ओंकारेश्वर पांडये जी का लेख भी बहुत अच्छा लगा, मैं यू.के.के हिन्दी सम्मेलन में थी । इसलिए विशेषत: पसंद आया । पत्रिका के उत्तम संपादन के लिए बधाई ।

अर्चना पेन्यूली (डेनमार्क)

'हिन्दी चेतना' का ये अंक पढ़कर ऐसा लगा जैसे मैं एक ऐसे सुन्दर गाँव में पहुँच गया हूँ, जहाँ हर ओर शांति और सुन्दरता का राज्य है । यह पत्रिका बहुत ही सुन्दर और सारगर्भित है और इससे हिन्दी जगत और समृद्ध हो रहा है ।।

आप लोगों को धन्यवाद ।

अचल वर्मा (भारत)

कुछ तो खलबली थी, मैंने आप की भेजी हुई लिंक देख ही ली और सच पूछिए अंतिम पृष्ट देखने और पढ़ने के बाद ही रुका । कुछ दिनों बाद कुछ लिखने का मन बना, उसके लिए फिर आप को धन्यवाद देना चाहता हूँ । हिन्दी चेतना को बहुत बधाई ।

आप का शुक्रगुज़ार..

आज़म कुरैशी (भारत)

इस बार की 'हिंदी चेतना' पढ़कर बहुत अच्छा लगा । हिंदी चेतना की टीम का परिश्रम झलकता है । अनेक- अनेक बधाई । इसके आलेख पढ़ना सुखकर लगा । डॉ. मनोज श्रीवास्तव का आलेख, अनिल जोशी का साक्षात्कार प्रशंसीय हैं । सारे आलेख रोचक एवं ज्ञान वर्धक हैं । श्याम त्रिपाठी जी का सम्पादकीय और सुधाजी जी का आख़िरी पन्ना पढ़ने की मुझे विशेष उत्सुकता रहती है ।

अदिति मजूमदार (अमेरिका)

व्यंग्य सम्राट प्रेम जनमेजय जी का ये विशेषांक हिंदी साहित्य प्रेमियों के लिए एक अनमोल भेंट है । हिंदी भाषा और साहित्य की दुनिया में इस पत्रिका का स्थान दिनों दिन महत्वपूर्ण होता जा रहा है।

पाठकों की उम्मीदों को पूरा करती हुआ हिंदी चेतना पत्रिका, प्रगति के पथ पर निरंतर अग्रसर है।

हिंदी भाषा की इस सेवा के लिए हिंदी चेतना की टीम को ढेरों बधाईयां ।

किरन सिंह

एम्स्टरडैम, नीदरलैंड

''हिंदी चेतना'' के जुलाई- सितम्बर २०११ अंक की प्रति प्राप्त हुई । कवर पेज देख कर निराशा हुई । हिन्दी चेतना एक स्तरीय पत्रिका है । ऐसा बचकाना कवर अच्छा नहीं लगा । पत्रिका के पृष्ट पलटने शुरू किए, सामग्री देख कर निशब्द हो गई । पंकज सुबीर की कहानी मर्मस्पर्शी है, कहानी पढ़ते हुए मैं उस त्रासदी को जी ली । कहानी पढ़ते हुए दुखद धटना क्रम को जीना भी अपने आप में एक सुखद अनुभूति होती है, इससे अधिक इस कहानी के लिए क्या कहूँ । केतलीना कहानी का निर्वाह अच्छा किया है । विषय कई प्रवासी कहानियों में पहले भी आ चुका है । पर अर्चना जी का शिल्प और प्रस्तुति कहानी को सुन्दर बना गई । कच्चा गोश्त कहानी क्यों लिखी गई, समझ नहीं सकी । कविताएँ, ग़ज़लें, आलेख, पुस्तक समीक्षा, पुस्तक प्राप्ति तक सारी सामग्री स्तरीय एवं प्रशंसनीय । संपादन और डिज़ाईनिंग के लिए टीम को बधाई ।

सुलभा वर्मा देशमुख

(शिकागो, अमेरिका)

प्रेम जनमेजय विशेषांक पोस्ट से प्राप्त हुआ । कॉफ़ी टेबल पर सजाने वाला अंक, अतुलनीय -संग्रहणीय । इस में छपी सामग्री पर विस्तार से लिखना चाहती हूँ । अगर पत्र एक लेख की तरह हो जाए तो क्या आप उसे स्पेस दे सकते हैं ?

सरिता पाठक (वाशिंगटन, डीसी)

(सरिता जी, आप निस्संकोच लिखें, हमारा दृष्टिकोण स्तंभ इसीलिए है-संपादक)

साक्षात्कार

साहित्य भावी समाज का निर्माण करता है..।

(रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' से सुधा ओम ढींगरा की बातचीत)

रामेश्वर काम्बोज हिमांशु आज कल विदेश यात्रा पर आए हुए हैं, ३ दिसम्बर २०११ को हिंदी प्रचारिणी सभा एवं हिंदी मार्ख़म बुक क्लब की ओर से मिलिकन मिल्स लाइब्रेरी ७६०० कैनेडी रोड, मार्ख़म , ओंटेरियो, कैनाडा में एक साहित्यिक संध्या का आयोजन किया गया, जिसमें काम्बोज जी मुख्य अतिथि थे और उनका एकल लघु कथा पाठ हुआ, साथ ही श्रोताओं के प्रश्नोत्तर भी हुए । वहीं पर हिन्दी चेतना के प्रेम जनमेजय विशेषांक का विमोचन भी काम्बोज जी के करकमलों से हुआ, जिसकी रिपोर्ट हिन्दी चेतना के साहित्यिक समाचारों में आप पढ़ सकते हैं । प्रतिष्ठित व्यंग्यकार और लघुकथाकार का सान्निध्य मिला तो हिन्दी चेतना का संपादक-मंडल इनका इण्टरव्यू लेने का लोभ संवरण नहीं कर पाया । प्रस्तुत है-रामेश्वर काम्बोज हिमांशु से डॉ. सुधा ओम ढींगरा की बातचीत-

प्रश्न : *काम्बोज जी, आजकल की कविताएँ आत्मकेंद्रित होती जा रही हैं । उनमें दुरुहता और अतिबौद्धिकता का समावेश होने के कारण जनमानस उससे जुड़ नहीं पा रहा । उस पर हाइकु, तांका जापानी काव्य विधाएँ साहित्य में स्थान पा रही हैं, जिनकी मात्राओं को पूरा करने और आकार में छोटा होने से उनमें काव्य भावात्मकता और अनुभूतियाँ समाप्त हो रही हैं, ऐसा कई काव्य प्रेमी एवं आलोचक महसूस करते हैं । आप इस बारे में क्या कहना चाहेंगे ?*

उत्तर: सुधा जी, जब कवि जनसामान्य से कट जाएगा, तभी इस तरह की रचनाएँ सामने आती हैं। जब कवि खुद को समाज से काट ले और तय कर ले कि वह सिर्फ़ वही लिखेगा, जो उसको अच्छा लगेगा; किसी के पल्ले पड़े या न पड़े।'किसके लिए लिख रहा हूँ, समाज के किस वर्ग के लिए लिख रहा हूँ', यह तो उसे तय करना ही पड़ेगा । जब कवि अपने परिवेश के बारे में सोच-विचार कर सर्जन करेगा तब जन सामान्य उससे जुड़ेगा। काव्य अभ्यास से निखारा जा सकता है; लेकिन काव्यानुभूति के अभाव में काव्य की रचना नहीं होती । यह नियम सब पर लागू होता है, चाहे वह रचना तुकान्त हो या अतुकान्त। अज्ञेय, रघुबीर सहाय, भवानी प्रसाद मिश्र या अन्य सप्तक कवियों को भी छन्द सिद्ध था । छन्द के ज्ञान और सिद्धि के बिना मुक्त छन्द भी नहीं लिखा जा सकेगा । काव्य-प्रतिभा की अनुपस्थिति में कोरा छन्द-ज्ञान भी काम नहीं आएगा । ऐसे लोगों के हाइकु-तांका में छन्द मिल जाएगा, काव्य अनुपस्थित रहेगा । ऐसा कचरा हर विधा में मिल जाएगा । मक्खी -रक्खी-चक्खी जैसे तुक मिलाने वाले तो कविता का और भी अहित कर रहे हैं। छन्द में वर्ण या मात्रा की गणना उसके लिए कठिन है; जो नौसिखिया है । नौसिखिया चालक गाड़ी को कहीं न कहीं दुर्घटनाग्रस्त ही करेगा। जिसे छन्द के स्वरूप और लय का पता है, उसे मात्राएँ नहीं गिननी पड़ती। जो दोहा लिखने में सिद्धहस्त हैं, वे दोहे की लय मन में इतनी बैठा चुके होते हैं कि मात्रा स्वत: छन्दानुरूप आ जाती हैं। तुलसी, रहीम, रसखान, बिहारी के दोहे चौपाई, सवैये आदि मात्रिक और वर्णिक छन्द होते हुए भी भावपूर्ण हैं। भावशून्यता कवि की दुर्बलता है, छन्द की नहीं। हाइकु, तांका की वर्ण-गणना तो और भी आसान है । हाँ, जो अकवि (काव्य प्रतिभा से शून्य) शॉर्टकट समझकर इन विधाओं में आना चाहते हैं, उनके धराशायी होने की सम्भावना के पीछे छन्द नहीं वरन् उनकी काव्यहीनता ही ज़्यादा ज़िम्मेदार है । एक पंक्ति को तोड़कर त्रिभुज-चतुर्भुज, अणु-परमाणु या आयतन-घनत्व कुछ भी लिखकर 5+7=5=17 वर्ण घसीट देना हाइकु नहीं है। छन्द का शरीर धारण करने से पहले उसे काव्य तो होना ही चाहिए । हिन्दी में 70 प्रतिशत से अधिक तो हाइकु का खर-पतवार ही उगा रहे हैं । हमें यह समझ लेना चाहिए कि छन्द साधन है, साध्य नहीं।

प्रश्न : लघुकथा लिखना कितना चुनौतीपूर्ण है और इसके भविष्य के प्रति क्या आप आश्वस्त हैं ?

उत्तर: कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक बात कहना सचमुच चुनौतीपूर्ण है । इस बात को हमारे प्रतिष्ठित कहानीकारों ने भी स्वीकार किया है । भाषिक और वैचारिक संश्लिष्टता के बिना यह सम्भव नहीं। अधकचरी भाषा और विश्रृंखल विचार और संवेदना के बल पर अच्छी लघुकथा नहीं लिखी जा सकती । समर्थ रचनाकार हिन्दी जगत् में बहुत हैं; अत: मैं पूर्णरूप से लघुकथा के उज्ज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त हूँ ।

प्रश्न : सुकेश साहनी जी और आप

लेखक घटना के व्यामोह में पड़कर, जब जस का तस उतारने की कोशिश करता है ,तब वह सभी अन्य तत्त्वों के साथ कथा के कथारस की भी उपेक्षा कर देता है । अनावश्यक शब्दों की या घटना की चर्बी लघुकथा को शिथिल और प्रभावशून्य करती है ।

लघुकथा डॉट काम के संपादक हैं और यह पत्रिका साहित्य में और ऑन लाइन पत्रिकाओं में बहुत प्रतिष्ठित पत्रिका मानी जाती है । लघुकथाओं के चुनाव में किन-किन बातों का ध्यान आप रखते हैं ?

उत्तर: सुकेश साहनी जी और मैं आने वाली लघुकथाओं को पढ़ते और विचार-विमर्श करते हैं । हर महीने सैंकड़ों लघुकथाएँ डाक और मेल से आती हैं। हमारी कोशिश रहती है कि सकारात्मक चिन्तन को ही बढ़ावा दिया जाए । कुछ रचनाकार सतही या अख़बारी घटना या समाचार को ज्यों का त्यों उतारकर भेज देते हैं । रचना की विषयवस्तु या प्रस्तुति में नयापन हमारे चयन का अधार बनता है ।

प्रश्न : माँ कह एक कहानी, राजा था या रानी.....बचपन में हम यही सुनकर बड़े हुए हैं ..आप लघुकथा के उद्भव और विकास पर कुछ रोशनी डालेंगें ।

उत्तर: कथा तो तब से है, जबसे आदमी ने समूह में उठना -बैठना, रहना, दु:ख दर्द में शामिल होना सीखा है । जातक कथा ,पंचतन्त्र, दृष्टान्त कथा आदि मार्गों से गुज़रती हुई यह विधा आज लघुकथा के रूप में है; लेकिन आज की लघुकथा को हम दृष्टान्त कथा नहीं कह सकते । यह उससे भिन्न आज के समाज का सच्चा आईना है। नित्यप्रति होने वाले परिवर्तनों की मूक दर्शक नहीं, वरन् यह समाज की चेतना की ध्वजावाहक बनी हुई है । लघुकथा आम आदमी की आकांक्षा और अपेक्षा से जुड़ी हुई है ।

प्रश्न : लघुकथा लिखने के लिए लेखक किन -किन बातों का ध्यान रखें, आप शिक्षक रह चुके हैं और आप जिस तरह से समझाएँगे, वह जानकारी नए लघुकथा कारों का मार्ग प्रशस्त करेगी ।

उत्तर: लघुकथा के लिए सबसे ज़रूरी है संयम । विचार, घटना, भाषा, सबका संयम । झटपट लिख डालना और बिना विलम्ब किए छपने के लिए रवाना कर देना बहुत घातक है । कोई घटना, चाहे हम उसके साक्षी रहे हों या भुक्तभोगी, ज्यों की त्यों लघुकथा नहीं बन सकती । कभी-कभी तो घटना का एक नाम मात्र का सिरा ही लघुकथा का अंग बन पाता है । कभी वह किसी दूसरे कथानक की संवाहक बन जाती है, ठीक उससे कतई भिन्न । लेखक घटना के व्यामोह में पड़कर, जब जस का तस उतारने की कोशिश करता है, तब वह सभी अन्य तत्त्वों के साथ कथा के कथारस की भी उपेक्षा कर देता है । अनावश्यक शब्दों की या घटना की चर्बी लघुकथा को शिथिल और प्रभावशून्य करती है । शीर्षक पर बहुत कम लोग ध्यान देते हैं, जबकि अच्छा शीर्षक यदि लघुकथा को प्रभावी बनाता है तो कमज़ोर शीर्षक उसका प्रभाव छीन लेता है । लघुकथा लेखक को अपने आसपास की सभी परिस्थितियों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण, उनका विश्लेषण और उन पर चिन्तन करना चाहिए । अधिक से अधिक अच्छी रचनाएँ पढ़ना, केवल साहित्य ही नहीं सामयिक परिवर्तनों पर भी नज़र रखनी चाहिए । किसी भी तरह के संकुचित वर्गवाद से ऊपर उठकर सोचना और लिखना चाहिए; क्योंकि लेखक पूरे समाज का है और पूरा समाज उसका अपना संगी-साथी है । जाति-पाँति, क्षेत्रीयता की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर सोचना चाहिए । संकुचित व्यक्ति किसी वर्ग का माउथपीस भले ही बन जाए ,वह सभ्य समाज का हितैषी नहीं हो सकता । दिमाग़ की बन्द खिड़कियों से ताज़ा वैचारिक हवा नहीं आती । लघुकथा लेखक यह भी ध्यान रखें कि यह न तो किसी कहानी का टुकड़ा है और न सारांश । यह अपने आप में पूर्ण है । इसका 'लघु' होना इसकी क्षिप्रता का सूचक है, न कि कमज़ोरी या मज़बूरी का ।

प्रश्न : काम्बोज जी, आदर्शों की बात करने वाले 'अधिकतर रचनाकारों' को मैंने दोहरी ज़िन्दगी जीते देखा है । आखिर कथनी और करनी में इतना अन्तर क्यों होता है । साहित्य समाज का दर्पण है पर प्राय: ऐसा देखने को क्यों नहीं मिलता .... ?

उत्तर: आपने कहा है कि साहित्य समाज का दर्पण है, तो यह बेचारा आपाधापी वाला लेखक भी उसी समाज का हिस्सा है । झूठे सम्मान और क्षणिक यश के लिए या छपास की पीड़ा से ग्रस्त लेखक ऐसा करते हैं, सच्चा साहित्यकार इस दोगलेपन से दूर रहता है। यदि वह लेखक दुर्भाग्य से कोई बड़ा अधिकारी हुआ तो सुविधाभोगी चारण उसे आसानी से मिल जाते हैं । 'हरफ़नमौला और हरफ़न अधूरा' की प्रवृत्ति वाले ये लेखक रात दिन छपास, सम्मान की मिर्गी से ग्रस्त रहते हैं । ये पद के फेर में अपने क़द पर ध्यान नहीं दे पाते । घटिया लेखन का अम्बार लगाने पर भी ये अपने ऊपर लेख लिखवाना, पुरस्कार या सम्मान का किसी भी तरह जुगाड़कर लेना अपना परम धर्म समझते हैं। इसके लिए जितना भी नीचे गिरना हो, हथकण्डे अपनाने हों, इन्हे मंजूर है । ऐसे लोगों को यह ज़रूर समझ लेना चाहिए कि पैसे के बल पर चाहे सौ जगह छप जाएँ, चाहे सम्मान खरीद लें (ऐसी बहुत -सी संस्थाएँ हैं, जो अयोग्य लोगों से पैसे ऐंठकर इस तरह का इन्तज़ाम कर देती हैं), अपने ऊपर पी-एच.डी भले ही करा लें; लेकिन एक सहृदय पाठक कभी भी इस तरह की किसी भी तिकड़म से नहीं खरीदा जाता । ऐसे लोग बाद में मरते हैं, इनका वह तथाकथित साहित्य इनसे भी पहले काल-कवलित हो जाता है । अच्छे साहित्यकार को न किसी तिकड़म की ज़रूरत होती है, न दोहरी ज़िन्दगी जीने की। वह अपनी रचनाधर्मिता से ज़िन्दा रहता है । दर्पण तो वही दिखाएगा जो सामने होगा । मैं यह कहना चाहूँगा कि साहित्य भावी समाज का निर्माण भी करता है कि समाज को कैसा होना चाहिए; अत: उसकी भूमिका केवल दर्पण बनने तक सीमित नहीं की जा सकती ।

प्रश्न : विदेशों में लिखे जा रहे साहित्य को आपने कितना पढ़ा है और आप उनके रचनात्मक संसार के बारे में क्या सोचते हैं ?

उत्तर: अच्छा साहित्य देश का हो या विदेश का, मैं यथासाध्य पढ़ने की कोशिश करता हूँ । हिन्दी में जो आजकल भारत से बाहर लिखा जा रहा है, उसे भी पढ़ने की कोशिश करता हूँ । उषा प्रियंवदा, सुषम बेदी, शैल अग्रवाल, अभिमन्यु अनत, वेद प्रकाश बटुक, अंजना संधीर, गौतम सचदेव, प्राण शर्मा, हरिशंकर आदेश, सुमन कुमार घई, पूर्णिमा वर्मन, सुधा ओम ढींगरा, तेजेन्द्र शर्मा, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, शैलजा सक्सेना, मानोशी चटर्जी, राकेश खण्डेलवाल, रेखा मैत्र, इला प्रसाद, भावना कुँअर, हरदीप सन्धु, अनीता कपूर, रचना श्रीवास्तव, मंजु मिश्रा, भावना सक्सेना आदि बहुत से साहित्यकारों की कविताएँ, कहानियाँ, लघुकथाएँ, उपन्यास पढ़े । सबके नाम दे पाना सम्भव नहीं है । अच्छी रचनाएँ हर जगह लिखी जा रही हैं; लेकिन एक बात मुझे खटकती है कि कभी-कभी प्रवासी की श्रेणी में रखकर बहुत से अच्छे रचनाकारों को दरकिनार भी किया जाता है । सफल और असफल रचनाकार तो सब जगह हैं। विदेश में भी इस तरह के जुगाड़वाले योद्धा नज़र आते हैं, जो रचनाकर्म के बजाय 'जुगाड़धर्म' को सर्वोपरि मानते हैं। तू मुझे पुरस्कार दे मैं तुझे दूँगा- 'परस्परं प्रशंसन्ति अहो रूपं अहो ध्वनि' वाले लोग तो सर्वव्यापक हैं । आदमी तो अच्छा और बुरा दोनों तरह का होता है । वह साहित्य, राजनीति धर्म आदि जिस भी जगह जाएगा, जैसा वह ख़ुद होगा, वहाँ वैसा ही काम करेगा।

प्रश्न : विचारधारा और रचना का कितना सम्बन्ध होना चाहिए ?

उत्तर: विचारधारा के बिना रचना का कोई अस्तित्व नहीं; लेकिन कौन -सी विचारधारा और कैसी विचार धारा? विचारधारा वही सराहनीय और स्वीकार्य है, जो सभी पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर मानव हित की बात सोचे । जो विचारधारा मानव-समर्थक न होकर किसी राजनीति या शासन की नीति की पोषक हो, वह कल्याणकारी नहीं हो सकती । जहाँ साहित्यकार की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति पर पाबन्दी लगी हो , वहाँ साहित्यकार दरबारी की भूमिका में ही सिमटकर रह जाएगा।

प्रश्न : काम्बोज जी, विचारों के बिना रचना का कोई अस्तित्व नहीं, हाँ विचार जब किसी भी तरह की धारा से प्रभावित हो जाते हैं, वह राजनीतिक हो या पूर्वग्रहों से ग्रसित, यही विचार धाराएँ साहित्यिक गुटबंदियों का रूप धारण नहीं कर लेतीं ...?

उत्तर: संकीर्ण विचार धाराएँ ही गुटबन्दी का कारण बनती हैं । साहित्य का मान-सम्मान तय करने वाले ऐसे लोग सामने आ जाते हैं ,जो साहित्यकार न होकर सत्ता के गलियारों में अपनी पैठ बनाए हुए होते हैं। इसी तरह के लोग साहित्य को कमज़ोर करने का या अपने हित में हथियार की तरह इस्तेमाल करने का काम करके गुटबन्दी को बढ़ावा देते हैं ।

प्रश्न : आज भी भारतीयों में विशेषकर हिन्दी लेखकों और आलोचकों के मन में पश्चिमी देशों को लेकर कई भ्रांतियाँ हैं, जोकि बहुत

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

जन्म: 19 मार्च,1949 (हरिपुर , जिला -सहारनपुर)

शिक्षा : एम ए-हिन्दी (मेरठ विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में) , बी. एड ।

प्रकाशित रचनाएँ : 'माटी, पानी और हवा', 'अंजुरी भर आसीस', 'कुकडूँ कूँ', 'हुआ सवेरा'(कविता संग्रह), मेरे सात जनम (हाइकु -संग्रह), मिले किनारे (ताँका और चोका संग्रह संयुक्त रूप से डॉ. हरदीप सन्धु के साथ) , 'धरती के आँसू', 'दीपा', 'दूसरा सवेरा' (लघु उपन्यास), 'असभ्य नगर'(लघुकथा संग्रह), खूँटी पर टँगी आत्मा(व्यंग्य -संग्रह),भाषा-चन्दिका (व्याकरण) , मुनिया और फुलिया (बालकथा हिन्दी और अंग्रेज़ी), झरना, सोनमछरिया, (पोस्टर कविता -बच्चों के लिए) अनेक संकलनों में लघुकथाएँ संकलित तथा गुजराती, पंजाबी, उर्दू, अंग्रेज़ी एवं नेपाली में अनूदित ।

सम्पादन :आयोजन,नैतिक कथाएँ (पाँच भाग), भाषा-मंजरी (आठ भाग), चन्दनमन (18 रचनाकारों का प्रतिनिधि हाइकु संकलन), गीत सरिता(बालगीत -3भाग), बालमनोवैज्ञानिक लघुकथाएँ, एवं मानव मूल्यों की लघुकथाएँ (श्री सुकेश साहनी के साथ)

वेब साइट पर प्रकाशन:रचनाकार, अनुभूति, अभिव्यक्ति, हिन्दी नेस्ट, साहित्य कुंज, लेखन, इर्द-गिर्द, इन्द्र धनुष, उदन्ती, कर्मभूमि, हिन्दी गौरव, गर्भनाल आदि ।

प्रसारण -आकाशवाणी गुवाहाटी ,रामपुर, नज़ीबाबाद ,अम्बिकापुर एवं जबलपुर से ।

निर्देशन: केन्द्रीय विद्यालय संगठन में हिन्दी कार्यशालाओं में विभिन्न स्तरों पर संसाधक (छह बार), निदेशक (छह बार) एवं केन्द्रीय विद्यालय संगठन के ओरियण्टेशन के फ़ैकल्टी मेम्बर के रूप में कार्य।

सेवा : 7 वर्षों तक उत्तरप्रदेश के विद्यालयों तथा 32 वर्षों तक केन्द्रीय विद्यालय संगठन में कार्य । केन्द्रीय विद्यालय के प्राचार्य पद (19 फ़रवरी1994- 31 अगस्त 2008) से सेवा निवृत्ति।

सम्प्रति: स्वतन्त्र लेखन ।

ई मेल : **rdkamboj@gmail.com, rdkamboj@gmail.com**

www.laghukatha.com (40 देशों में देखी जाने वाली लघुकथा की एकमात्र वेब साइट)

http://hindihaiku.wordpress.com (हिन्दी हाइकु)

http://trivenni.blogspot.com (त्रिवेणी -हिन्दी ताँका और चोका का ब्लाग)

http://patang-ki-udan.blogspot.com (बच्चों के लिए ब्लॉग)

बार उनकी कविता, कहानियों में परिलक्षित होती हैं और अक्सर इन देशों के नकारात्मक पक्ष को ही उजागर करती हैं । ऐसे लोगों की सोच को कैसे बदला जा सकता है...?

उत्तर: आपकी बात सही है । किसी भी जगह की परिस्थितियों को न जानना, जानने की कोशिश भी न करना व्यक्ति दोष है। अपने निर्धारित या गढ़े गए निकष पर सबको कसना ग़लत है । आज इतने साधन-संसाधन हैं ; साहित्यकार को अपना दायरा बढ़ाना चाहिए । इन भ्रान्तियों का कारण प्रमाद और संकीर्णता ही ज़्यादा है। साहित्यकार को चाहिए कि दूसरे देशों के भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्वरूप को समझे, तभी उस देश के साहित्य को समझा जा सकता है । भारत में पतझर खत्म होते ही नई कोंपले फूटने लगती हैं । कनाडा में तो पतझर होने के कई महीने तक पेड़ों को नंगे सिर बर्फ़ और ठण्ड की मार झेलनी पड़ेगी, तब जाकर नई पत्तियाँ आएँगी । अनजान को इतना लम्बा पतझर अविश्वसनीय ही लगेगा।

प्रश्न : *आपने व्यंग्य भी लिखे हैं, जिनका संग्रह 1990 में 'खूँटी पर टँगी आत्मा' के नाम से आया था। आपके ये व्यंग्य आकाशवाणी के रामपुर, अम्बिकापुर और जबलपुर केन्द्र से भी प्रसारित हुए। आपका एक व्यंग्य नाटक- 'लोकल कवि का चक्कर' भी आकाशवाणी जबलपुर से प्रसारित हुआ था । क्या आप व्यंग्य को एक विधा मानते हैं ? व्यंग्य का हास्य या तात्कालिक टिप्पणी-लेखन से कितना सम्बन्ध है?*

उत्तर: सुधा जी, व्यंग्य एक स्वतन्त्र विधा है । व्यंग्य पसली की गुम चोट की वह पीर है जो ठण्ड में ही नहीं पुरवा के झोंके में भी टीसती रहती है । व्यंग्य क्षणिक मनोरंजन नहीं, वरन् पीड़ित समाज का स्थायी भाव है। यह जंग खाई पर्तों को खोलता है ,तो साथ ही चेहरे के पीछे छीपे बदनुमा और नापाक चेहरों को भी बेपर्द करता है । यह पीड़ित और दुर्बल का उपहास नहीं करता, बल्कि उसका पक्षधर है । हास्य क्षणिक गुदगुदी है, पानी के बुलबुले की तरह, शुद्धरूप से मनोरंजन । कभी-कभी जब हास्य फूहड़पन का रूप लेता है, तो केवल हास्यास्पद

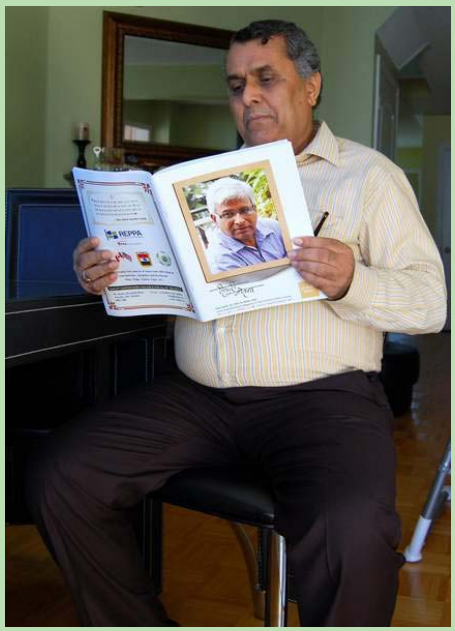

श्री रामेश्वर काम्बोज "हिमांशु" हिंदी चेतना के प्रेम जनमेजय विशेषांक का अवलोकन करते हुए

रह जाता है । टी. वी का कॉमेडी सर्कस इसी श्रेणी में या यों कहिए इससे भी किसी नीचे के पायदान पर जाकर टिकता है, जिसकी भाषा गालियों की जुगाली किए बिना चार क़दम नहीं बढ़ती । अख़बारों के कॉलम की तात्कालिक टिप्पणियाँ जिस प्रकार लिखी जाती हैं, उसे व्यंग्य तो नहीं कहा जा सकता, हाँ मनोरंजन और छींटाकशी का एक घालमेल ज़रूर कहा जा सकता है, जिसमें कहीं-कहीं व्यंग्य के छींटे मार दिए जाते हैं । टिप्पणी जिस दिन लिखी गई है , वह सिर्फ़ उस दिन के लिए महत्त्वपूर्ण है । अगले दिन उन परिस्थितियों के ख़त्म हो जाने पर वह तथाकथित व्यंग्यात्मक टिप्पणी भी बेमानी हो जाती है । व्यंग्य का फ़लक बहुत व्यापक है, टिप्पणी का सीमित तथा हास्य का क्षणिक पानी के बुलबुले की तरह। वैचारिक व्यापकता के कारण कभी अच्छी टिप्पणी भी अच्छा व्यंग्य बन जाती है, लेकिन हमेशा नहीं।

प्रश्न : *हिन्दी के विकास हेतु प्रयत्न करने के बजाय कई लोग हिन्दी के नाम पर बड़ी-बड़ी गोष्ठियाँ और सेमिनार कराकर भारत सरकार की जेब ढीली कराने में यकीन रख रहे हैं, जबकि होना ये चाहिए कि इस तरह अधिक ख़र्च और कम विकास की बजाय, कम ख़र्च और अधिक विकास पर ध्यान देना चाहिए और अनुवाद, हिन्दी पर शोध, भाषा के प्रसार, उस पर अंतर्राष्ट्रीय छात्रवृत्तियाँ एवं बदलते युग के साथ कदमताल मिलाने के लिए हिन्दी के बेहतरीन सॉफ्टवेयर बनाए जाने की आवश्यकता लगती है । पर लगता है जैसे भारत सरकार के हिन्दी विभागों में सबसे बड़े हिन्दी के भितरघाती बैठे हुए हैं, कई बार सिर्फ चंद दिनों के हिन्दी मिलन के नाम पर लाखों या कहें कि करोड़ों रुपये फूँक दिए जाते हैं । आप इसे कितना जायज़ मानते हैं या कि हिन्दी के योगदान में सहायक समझते हैं?*

उत्तर: मैं आपकी बात से सहमत हूँ । 'साहित्य अकादमी जैसी राष्ट्रीय संस्था में राष्ट्रीय स्तर के' आयोजन में मैंने ऐसे विशिष्ट वक्ताओं को भी सुना है, जो साधारण साहित्यिक तैयारी करके भी नहीं आते । सरकारी कार्यक्रम, योजनाओं की अपनी सीमाएँ हैं । सरकारी संस्थाएँ हमारे उन अधिकारियों के कब्जे में है , जिन्हें साहित्य से कोई लेना-देना नहीं । कहीं-कहीं तो साहित्य विरोधी वातवरण ही ज़्यादा सक्रिय है । अवसरवादी लोग सारी सुविधाएँ हड़पने के लिए कुछ भी करने को तैयार रहते हैं । खेद तो तब होता है जब दूसरे देशों में हमारे देश के प्रतिनिधि भी कुछ अधिक नहीं करते । अगर कोई वहाँ कुछ करना भी चाहता है, तो उसे वहाँ भी उसी भारतीय बाबूगिरी और अफ़सरशाही का सामना करना पड़ता है । भाषा और साहित्य निरन्तर प्रवाहित होने वाले समाज के भीतर उपजता है । यदि इच्छा शक्ति हो तो सरकारें उसे प्रोत्साहन दे सकती हैं; लेकिन जब अन्तर्राष्ट्रीय महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय के कुलपति पद के लिए भी सरकार अफ़सर ही खोजती है तो क्या किया जाए । जिन्हें भाषा और साहित्य से प्यार है, उन्हें अपना मार्ग खुद तलाश करना पड़ेगा । परमुखापेक्षी बनकर काम नहीं चलेगा। संसार में अच्छे और समर्पित लोगों की कमी नहीं है । विदेश में 'श्याम त्रिपाठी जी और आपकी टीम' हिन्दी चेतना के 13 वर्ष पूरे कर चुके हैं। सरकारी तन्त्र यह कर पाता, मुझे विश्वास नहीं है।

कहानी

आम आदमी

शैल अग्रवाल (यू.के.)

सामने फैली, पीली, मटमैली गँगा शिवानी के मन सी ही उमड़ी आ रही थी.. जल से लबालब फिर भी सोच और सँयम से जुड़ी .. अपने ही कच्चे किनारों में रिसती-उफनती। उफान देखकर तो ऐसा लग रहा था मानो आस-पास का सब कुछ ही बहा ले जाएगी यह। अभी-अभी जो शिवानी ने देखा, वह भी तो कुछ ऐसा ही था.. आदमियों का उमड़ता रेला उससे चुपचाप किनारा काटकर निकला जा रहा था । बहाने को तो बहुत सारी दया.. ममता... सबकुछ ही बहाया जा सकता था, बहुत कुछ किया जा सकता था पर कुछ नहीं हुआ ।

वैसे भी यह हिन्दुस्तान है यहाँ अक्सर सब अपरिवर्तित ही तो रह जाता है। कुछ नहीं हिलता डुलता.. ज़रूरत पर भी नहीं । दूसरों की ज़रूरत पर, विशेषत: एक गरीब की ज़रूरत पर, तो हरगिज ही नहीं। एक कुत्ते के इस तरह से मरने पर शायद कोई सहृदय लाश को हटा भी देता पर एक गरीब आदमी की मौत तो रोज़ की बात है.. खासकर के इस व्यस्त, बदनाम जी.टी. रोड पर। कई बार मुगलसराय से काशी जाती शिवानी भी इस ट्रैफिक-जाम में फँसी है पर यूँ बगल में पड़े मरते, घायल आदमी की तरफ से आँख चुराकर चुपचाप इंतज़ार करने का यह उसका पहला मौका था।

दुश्मन को भी न डाले भगवान कभी ऐसी परिस्थिति में। दम तोड़ते उस गरीब को लगता है अभी-अभी ट्रक कुचलकर गई है। खून अभी भी बह रहा था और गिनी-चुनी साँसों का कोटा लगता है अभी कुछ और बाकी था पर ख़ामख़्वाह कौन हाथ लगाए इस झँझट में, वह भी सुबह-सुबह आठ बजे, जबकि हर आदमी व्यस्त होता है.. जल्दी में रहता है। आखिर अपने-अपने काम पर भी तो पहुँचना है ? किसी को दुकान खोलनी है तो किसी को दफ्तर जाना है। किसी के इम्तहान हैं तो कोई सुबह चार बजे का निकला हुआ है। पूजा-पाठ, सैर-सपाटे के बाद अब तुरंत ही घर वापस पहुँचना है। मदद को कौन आए.. आखिर किसके पास इतनी फुरसत है ? फिर पुलिस केस भी तो बन सकता है ? वैसे भी उस आदमी की अचेत मूर्छा तो अब उसे कराहने और चीखने-चिल्लाने, मदद माँगने, इन सब झंझटों से बहुत दूर ले जा चुकी थी। सहायता माँगना तो उसके लिए हमेशा से ही शायद कठिन और बेकार रहा था। फिर आज ही कोई उसके लिए आफत क्यों मोल ले, क्यों जान जोखम में डाले ? जो भी किया उसने तो हमेशा अकेले ही किया है, तड़प-तड़प-और पिस-पिसकर.. फिर मौत ही क्यों एक अपवाद बने ?

सैकड़ों कारों, बसों, और ट्रकों की लाइन उस ट्रैफिक जाम में लगी हुई थी। हजारों लोग उस दम तोड़ते आदमी का नज़ारा उचक-उचककर अपनी सीट से देख रहे थे पर किसी को भी इतनी फुरसत नहीं थी कि उसके लिए, उसके आराम के लिए कुछ कर पाए।

अचानक एक दूधवाला उधर से गुज़रता है

और अपने काँधे का अँगोछा उतार कर उढ़ा देता है.. शायद उसके दर्द ने उसे छू लिया है या फिर उसमें उसे अपना ही आने वाला कल दिख गया है। ज़रूर उसी के जैसा, उसी की जात-बिरादरी का ही कोई रहा होगा...।

शिवानी की आँखें भर आईं... इन गरीबों की भी क्या ज़िन्दगी है...समस्याओं से घुनी.. कब पके फोड़े सी फूट पड़े.. वे खुद भी नहीं जानते। पापा की नज़रें चुराकर शिवानी ने आँखें पोंछ लीं.. अब वह आखिर किस मुँह से कहे कि गाड़ी रोको पापा और इसकी मदद करो.. बरसों पहले एकबार ऐसे ही रो-धोकर, ज़िद करके, नन्ही शिवानी ने गाड़ी रुकवाई थी और रात के अँधेरे में ज़ेवरों से लदी भाभी, माँ, पापा सब को मजबूर कर के, कार से उतारकर सड़क पर खड़ा कर दिया था.. वह भी बेबस असहाय.. एक अनजान गाँव के अनजाने नुक्कड़ पर। एक अच्छी-खासी मुसीबत खड़ी कर दी थी उसने उस दिन तो समूचे परिवार के लिए।

सामने एक जीप दुर्घटना की शिकार, पेड़ में धँसी खड़ी थी और अन्दर फँसे, दम तोड़ते नौजवान का शरीर बीच-बीच में झटके ले-लेकर मदद माँग रहा था। शायद कोई उम्मीद की डोर उसके जाते प्राणों को अभी तक हिलगाए हुई थी.. बगल में बैठा साथी तो कब का जा चुका था। जीप सड़क से फिसल कर पेड़ से जा टकराई थी और स्टीयरिंग-व्हील ड्राइवर के सीने से। अब तो शायद काट कर ही शव को अलग किया जा सकता था। पर यह दूसरा तो अभी साँसें ले रहा था। कँधे अभी भी हिल रहे थे और अभी भी जख्मों से खून बह-बहकर बाहर आ रहा था। देखकर पापा को भी दया आ गई। जल्दी-जल्दी उसके घाव पर अपनी नई लुँगी की पट्टी कसकर बाँध दी और मातादीन से कहा कि तुम इसे जीप में लिटाकर पास के अस्पताल में ले जाओ। हम लोग यहीं इंतज़ार कर रहे हैं। बस जाना और आना। वक्त बहुत ही नाज़ुक है।

और 'जी बाबूजी' कहकर उस अधमरे अजनबी को लेकर मातादीन चल पड़ा था बिना यह पूछे या जाने-समझे कि अगला अस्पताल कितनी दूर है, कौनसा रास्ता ठीक रहेगा और उसे कितना वक्त लगेगा ? इस सबसे भी ज़्यादा कि अब आगे उसके साथ और क्या-क्या बीतेगी?

पता नहीं अगला शहर कितनी दूर था, उसे कितनी देर लगी, बस शिवानी को इतना ही याद है कि जब रात खूब हो गई तो पापा ने वहाँ और खड़ा रहना उचित नहीं समझा था। वह अभी सोच ही रहे थे कि कहाँ जाएँ, क्या करें कि सामने से एक गाँव वाला आता दिखाई दे गया था और पापा के पूछने पर ''क्यों भैया यहाँ कहीं रात में ठहरने का इन्तजाम हो सकता है क्या ?'' वह वहीं हाथ जोड़कर खड़ा हो गया था ''नाहीं, बाबूजी, ई तो बहुत छोटा सा गाँव है। हमार झुपड़िया है न, आप लोग दुक्खम्-सुक्खम् वहीं रतिया निकाल लें। ऐसन बेबखत जनानी और बचवा लोगन के सँग, इहाँ पे ठहरना भी तो उचित नाहीं।''

पापा को आदमी सच्चा और ईमानदार लगा फिर और कोई चारा भी तो नहीं था वैसे भी जोखम की सब चीजें तो पहले ही पहने हुए कपड़ों में इधर-उधर छुपा दी गईं थीं। मम्मी बार-बार न जाने किस-किस को कोसे जा रहीं थीं।

''पता नहीं किस कमबख्त का मुँह देखकर उठी थी आज सुबह मैं !''

वह रात सच में बहुत ही लम्बी और डरावनी थी और वह घसियारा हम सबसे ज्यादा समझदार और दुनियादार।

''बाबूजी काहे को दूसरे की चिता पर रोने पहुँच गए आप भी। ऊ भला मानष तो जी चुका आपन जिन्दगी। इस गढ़ियल सड़कवा पर तो रस्ता बिच ही टें कर जाएगा, हस्पताल का पहुँचेगा ऊ, और आपके डराइबर साहब को दरोगा बाबू दफा तीन सौ दो में धर लेवेंगे। ई सब सालन की आपस में मिली-भगत जो होत है। ऊपर से नीचे तक सब आपन जेब भरन में ही लगे रहत हैं। भलाई का तो जमाना ही नाहीं, बाबूजी।''

मन का पूरा गुस्सा निकाल लेने के बाद वह खुद ही थम गया और शरमाकर बोला ''पर अगर आप जैसे लोग न हों तो ई ससुरी धरती धरातल में न धँस जाए ? ''

लगता है उसने भी अपना कोई प्यारा, कोई निजी, ऐसी ही किसी दुर्घटना में खोया था। पापा ने सहानुभूति से उसके कँधों पर हाथ रख दिए, बातों से भुक्त-भोगी जो लग रहा था वह, पर उसकी बातों से सभी डर गए थे।

अगले दिन सुबह सात बजे तक, बारह घंटे बाद भी जब मातादीन न लौटा तो पापा को चिन्ता होने लगी। आसपास के दो-तीन कस्बों के सरकारी अस्पतालों में फोन करने के बाद भी निराशा ही हाथ लगी। लगता था केस काफी सीरियस था और सीरियस केस में कम डॉक्टर ही अपना हाथ डालते हैं। रेप्यूटेशन और प्राइवेट प्रैक्टिस दोनों का ही जो सवाल होता है।

शैल अग्रवाल

जन्म: 21 जनवरी 1947- वाराणसी, उत्तर प्रदेश.

शिक्षा: संस्कृत, कला और अंग्रेजी में स्नातक व स्नाकोत्तर अंग्रेजी साहित्य।

मातृ भाषा: हिन्दी, भारत से विदेश आगमन: 1968- यू.के.

प्रकाशित कृतियाँ: समिधा- काव्य संग्रह, ध्रुवतारा- कहानी संग्रह, लंदन पाती- समसामयिकी निबंध संग्रह, संकलनों, पत्र-पत्रिकाओं एवं ब्लागों और दूरभाष पर कहानी, कविता एवं आलेख आदि । मार्च 2007 से द्विभाषीय साहित्यिक मासिक पत्रिका **www.lekhni.net** का नेट पर नियमित प्रकाशन।

सम्मान:

प्रवासी कविता सम्मान- संयुक्त अलंकरण- साहित्य अकादमी एवं अक्षरम, समिधा के लिए लक्ष्मीमल्ल सिंधवी सम्मान, प्रवासी हिंदी प्रचार-प्रसार सम्मान- उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान-लखनऊ, हिंदी सेवा सम्मान-यू.के. हिंदी समिति, संप्रति-हिन्दी और अंग्रेजी में स्वतंत्र लेखन

संपर्क:-

shailagrawal@hotmail.com

पर अगले दो शहर सासाराम और पटना ही थे। पूछताछ करने पर पता चला कि हाँ इस नाम का एक आदमी एक मृत शव को लेकर आया ज़रूर था, रात में दो बजे पटना के अस्पताल में, पर अब वह पुलिस की हिरासत में बन्द है क्योंकि उसके ऊपर, उसी आदमी के खून का इलज़ाम है।

''अजीब अँधेरगर्दी है, मदद करो तो यह सज़ा मिलती है ?'' पापा का गुस्सा आपे से बाहर हो रहा था।

''तो क्या हम उस बीस-पच्चीस साल के नौजवान को वहीं सड़क पर मरता छोड़ देते ?''

''आप बाबू लोगों का भी दिमाग खराब रहता है हर दम घूस खा-खाकर। अपने साहब को बुलाइये, आप।''

वह तो किस्मत की बात थी कि पटना के डी. आई. जी. तक पहुँच हो गई और दस हजार रुपए ले-देकर मामला सलट गया। वैसे दस हजार रुपए कम रकम नहीं थी उस जमाने में, लोगों की बेटियों की शादियाँ हो जाती थीं इतने रुपयों में, मुफ्त की यह थुक्का-फजीहत अलग, परेशान पापा शिवानी की तरफ देखते हुए मन ही मन बड़बड़ाए जा रहे थे पर डरी शिवानी को देखते ही अगले पल ही आगे बढ़कर उन्होंने उसे गोदी में छुपा लिया।

''तुझपर नहीं नाराज़ हूँ बेटा, तूने तो अपनी तरफ से भला ही सोचा था।''

वह तो बस पापा का शिवानी के प्रति प्यार और वक्त की नाजुकता ही थी जिसने उन्हें शांत रखा पर उसके बाद एक बात तो निश्चित हो गई थी कि अब सड़क पर पड़ी किसी लावारिस ज़िंदा या मुर्दा लाश की मदद करने की कोई ज़रुरत नहीं। ज़्यादा मन न माने या आत्मा कचोटे, तो बाद में क्रिया-करम के लिए पैसे भिजवा दो। गरीबों में बँटवा दो। मन्दिर जाकर भगवान से अपनी बेबसी के लिए माफी माँग लो। बस, इससे ज्यादा और कुछ नहीं।

आज फिर पापा और शिवानी दोनों के ही मन में उथल-पुथल थी, कोई भी कुछ नहीं बोल पा रहा था। बोलते भी क्या ? डर जो रहे थे कि किसी नई मुसीबत में न फँस जाएँ ? वह तो बस जल्दी ही वहाँ से निकल भागना चाहते थे। दोनों ने ही आँखें बन्द कर लीं, उधर उस घायल की तरफ देखा तक नहीं।

अभी-अभी दस घँटे की यात्रा के बाद बदन थक कर चकनाचूर था और मारे गर्मी के बुरा हाल।.. अब तो बस घर जाकर ही आराम मिलेगा। पौन्टून ब्रिज से ही गाड़ी निकाल लो, उन्होंने ड्राइवर को आदेश दिया। मनोहारी गँगा का दृश्य लुभावना था, थके मन को चैन मिला। उस पानी के विस्तार को छूकर आती ठँडी हवा के सुहाने झौंकों से पल भर को तो ऐसा लगा, मानो मन तरोताज़ा हो गया।

पर अँदर की टीस अभी भी बार-बार ही उभर आ रही थी, पता नहीं कौन होगा वह, उसके घर वालों को जाने कब पता चले, जाने कितनी तकलीफ से गुज़रना पड़े उस अभागे को, वगैरह-वगैरह ?

माँ दरवाज़े पर ही इंतज़ार करती मिलीं, ''इतनी देर कैसे कर दी बेटी? मैं तो कबसे इंतज़ार कर रही थी। बुरे-बुरे ख़याल मन में आ रहे थे। आखिर जब नहीं रहा गया तो दिनेश को भेजा मैंने, ''जा देखकर आ। '' सोचा वैसे भी तुम्हें थोड़ी मदद ही मिल जाएगी बच्चों के साथ... सामान चढ़ाने-उतारने में।''

नाती- नातिनों को गोद में उठाए-लड़ियाते, माँ पूछे जा रहीं थीं, ''मिला या नहीं ? आराम-आराम से गया होगा, कम नटखट नहीं है, यह भी। कहीं रुककर, पान वगैरह खाने लगा होगा ? चलो तुम सब फ्रेश हो लो। कुछ खा पीकर आराम कर लो। परेशान हो गए होगे ?''

साल भर से बिछड़ी बेटी के लिए माँ का हेज उमड़ा पड़ रहा था।

नहा धोकर निकली शिवानी और बच्चे अभी डोसे का पहला निवाला ही तोड़ पाए थे कि दूध वाले का बेटा गोपाल दौड़ा-दौड़ा आया ''बाबूजी, बाबूजी'' ''बाबूजी कहाँ हैं ?''

''इतना घोड़े पर सवार होकर क्यों आया है, क्या बात है? क्या काम है बाबूजी से ? अभी-अभी थककर सोए हैं। शाम को आना '' माँ बीच में ही उसकी बात काटकर बोल पड़ीं।

''नहीं माँजी बहुत बुरी खबर है। अभी-अभी भोलू के ससुर का फोन आया था, वह अपना दिनेश है न.....''

वह तो बस पापा का शिवानी के प्रति प्यार और वक्त की नाजुकता ही थी जिसने उन्हें शाँत रखा पर उसके बाद एक बात तो निश्चित हो गई थी कि अब सड़क पर पड़ी किसी लावारिस जिंदा या मुर्दा लाश की मदद करने की कोई ज़रूरत नहीं। ज़्यादा मन न माने या आत्मा कचोटे, तो बाद में क्रिया-करम के लिए पैसे भिजवा दो। गरीबों में बँटवा दो। मन्दिर जाकर भगवान से अपनी बेबसी के लिए माफी माँग लो।बस, इससे ज्यादा और कुछ नहीं।

''क्या हुआ दिनेश को?'' बाबूजी कमरे से हड़बड़ाकर तुरन्त बाहर आगए।

''कुछ नहीं बाबूजी।''

लड़का सकपका गया। क्या कहे, कैसे कहे वह इनसे ? वैसे भी बाबूजी दिल के मरीज हैं। फिर दिनेश तो बाबूजी का खास आदमी था। दिन-रात इनकी सेवा करता था। बाबूजी को रात में भी किसी चीज़ की ज़रुरत और तकलीफ़ न हो इसलिए वहीं उनके कमरे में उनके पास ही ज़मीन पर सोता था। बिल्कुल अपने रामभक्त हनुमान की तरह। और यह भी तो उसे बेटे जैसा ही मानते थे वरना कौन आजकल नौकरों को इतनी अच्छी तरह से रखता है। बस सूखी-सूखी तनख्वाह ले लो। ...पर बताना तो पड़ेगा ही, देर-सबेर...।

और गोपाल ने हिम्मत करके खबर दे ही दी ''असल में आज सुबह मुगलसराय में दिनेश का एक्सीडेंट हो गया बाबूजी। किसी को पंचनामे के लिए चलना पड़ेगा, अभी-तुरंत। ''

एक हृदय-विदारक घुटी चीख को अँदर ही रोकने के प्रयास में काँपते पापा वहीं ज़मीन पर गिरते-गिरते से बैठ गए। दर्द के मारे जानवरों की तरह कराहने और छटपटाने लगे। धीर-गँभीर पापा को इतना विचलित शिवानी ने पहले कभी

तेज़ और सच्चे स्वभाव के दिनेश को ज़्यादा वक्त नहीं लगा था घर-बाहर का हर काम सीखने में। अपनी निष्ठा और लगन से तो उसने सबका मन ही जीत लिया था। कितनी जल्दी अपना बन गया था वह, पर बदले में क्या मिला उसे?

नहीं देखा था। वह तो गीता के आदर्शों पर चलते थे, फिर यह आज क्या हो गया पापा को ? शिवानी ने लपककर पापा को सँभालने की कोशिश की।

मातादीन दौड़कर चौके से पानी ले आया ''आखिर बेटे जैसा ही तो था, बेटे सी ही सेवा की है दिनेश ने इनकी। मोह तो हो ही जाता है बिटिया, बीस-पच्चीस साल का साथ है। मुश्किल से दस-बारह बरस का लड़कवा ही तो था जब आया था, तब ही से तो इहाँ बाबूजी के पास, आप लोगों के साथ रह रहा है।''

पापा के चेहरे पर पानी की बूँदें छिड़कते हुए मातादीन शिवानी को बाबूजी की हालत का मर्म समझाने का प्रयास करने लगा, पर किंकर्तव्य-विमूढ़ सी शिवानी को तो कुछ समझ में ही नहीं आ रहा था। बस चारों तरफ से आते शब्दों के पक्षी उसके कानों के आसपास चोंच मार-मार कर उसे लहुलुहान कर रहे थे।

अपनी ही समाधि में लीन शिवानी सोचे जा रही थी-माँ को कैसे बता पाएगी वह कि दिनेश उसे मिला था आज ही...अभी और-इसी सुबह। उसी सड़क पर, वहीं उन्हीं की कार के पास, खून में लथपथ, आखिरी साँसें लेता हुआ। और उन लोगों ने मदद की तो दूर, उसकी तरफ मुड़कर भी नहीं देखा था। यूँ ही तड़प-तड़पकर मरता छोड़ आए थे उसे। जल्दी से झट अपने घर आ गए थे, क्योंकि किसी पराए झँझट में नहीं फँसना चाहते थे वह लोग। एक बार पहले भी ऐसे ही जल जो चुके थे वे, और जान-बूझकर बारबार जलना तो मूर्खों का ही काम है।

काश....एक बार...बस एक बार वह या पापा मुड़कर देख लेते, शायद दिनेश बच जाता। कम से कम उसे कुछ आराम, कुछ राहत, कोई मदद या तसल्ली तो दे ही सकते थे वे। कम से कम इस आग में तो न जलते । माना जीना मरना भगवान के हाथ में है, पर उन्हें भी तो कुछ न कुछ करना ही चाहिए था...।

शिवानी की दुख और पश्चाताप से झुकी आँखों के आगे बीस साल पुराना एक दृश्य, चलचित्र सा घूम रहा था, कुछ हठीली आवाज़ें कान में गूँजे जा रही थीं। यही सुबह का सात आठ-बजे का समय और यही गर्मियों का उमस भरा मौसम। हरिया काका की उँगली पकड़े एक आठ-नौ साल का लड़का, पट्टे का पैजामा और मारकीन की कमीज़ पहने शरमाया-शरमाया खड़ा है और बगीचे में अपने पैर के अँगूठे से क्यारी की मिट्टी कुरेदे जा रहा है।

''पापा, कौन है यह?'' लगभग उसी उम्र की, अधजगी शिवानी वहीं बिस्तर से, कौतूहल वश पूछे जा रही है।

''तेरा भैया है बेटी।'' इसके पहले कि वह कुछ और पूछे, पापा जबाब देते हैं।

''अपने हरिया काका का बेटा है। जा इसे अन्दर ले जा, कुछ खिला-पिला दे। रात भर का भूखा-प्यासा है। अभी-अभी इस नासमझ ने अपनी माँ को खोया है। और हाँ, माँ से कहना-थोड़ा तेरे हिस्से का लाड़-दुलार इसे भी दें। इसका भी वैसे ही ध्यान रखें।''

वह दिन और आज का दिन, दिनेश घर का सदस्य ही तो था, पापा का अजन्मा बेटा। शिवानी का अपना बड़ा भाई। वह तो छोटे से ही रहता-सोता सब घर के अन्दर ही था। हरिया काका की कोठरी में तो उसका मन ही नहीं लगता था और उसकी यह आदत किसी को कभी खली भी तो नहीं थी, क्योंकि बदले में दिन भर सबका काम जो करता रहता था दिनेश। हरेक की जीभ पर बस एक दिनेश का ही नाम तो रहता था। हरिया काका को तो मानो उसने रिटायर ही कर दिया था। तेज़ और सच्चे स्वभाव के दिनेश को ज़्यादा वक्त नहीं लगा था घर-बाहर का हर काम सीखने में। और अपनी निष्ठा और लगन से तो उसने सबका मन ही जीत लिया था। कितनी जल्दी अपना बन गया था वह, पर बदले में क्या मिला उसे?

और यही सच शिवानी को दंशने लगा। क्या उनके अँदर का आदमी हमेशा के लिए सो गया, अब कभी नहीं जगेगा वह ? क्या बस एक ही दुर्घटना में मर गया वह, या समाज और परिस्थितियों की आड़ ले वे (वह और पापा) और उनके जैसे जाने कितने, अनगिनित पढ़े-बेपढ़े, बेबकूफ स्वार्थ-वश उसे खुद ही मार आए ? कम-से-कम अस्पताल में एम्बुलेंस के लिए एक फोन तो कर ही सकती थी वह, इतना तो गैरों के लिए भी किया ही जा सकता है... इसमें तो कोई अहित नहीं, कोई खर्च नहीं, बस बहनें ऐसी ही होती हैं क्या ? और यह पापा...? पापा तो उसके बाबूजी थे.....हरिया काका से भी ज़्यादा प्यार दिया था उसने इन्हें।

शिवानी रोते-बिलखते पापा का दर्द अच्छी तरह से महसूस कर पा रही थी, पर एक बात उसकी समझ में नहीं आ रही थी कि पापा इस तरह से बिलख क्यों रहे हैं ? वह क्या चीज थी जिसने उन्हें पूरी तरह से तोड़ दिया ...दिनेश की अकाल-मृत्यु? उसके न रहने से, होने वाली ढेर सारी असुविधाएँ? या फिर खुद इनकी अपनी कायरता और निष्कर्मणता? अनजाने में ही सही, निर्मम और ठँडी, स्वार्थी निष्ठुरता ! क्यों वह आज अपने को साँत्वना नहीं दे पा रहे? क्यों गीता के श्लोकों से भी आज कुछ समझ नहीं पा रहे? क्यों पापा एक आम आदमी की तरह बस फूट-फूट कर रोए ही जा रहे हैं?

...पर, एक आम-आदमी इससे ज़्यादा और कर भी क्या सकता हैं?

कहानी

सुमन सारस्वत (भारत)

"डोंट टेल टू आंद्रे"

कार १२० किलोमीटर प्रति घंटे की रफ़्तार से भागी जा रही थी । मंजिल थी गोवा । पीछे की सीट पर मेरी १४ साल की बेटी और ८ साल का बेटा दोनों अंड़से हुए पड़े थे । आगे की सीट पर मैं और स्टेयरिंग पति के हाथों में थी । अब स्पीड कम हो चुकी थी क्योंकि घाट की चढ़ाई आ चुकी थी । मैं आँखें बन्द किये हुए थी । सूरज सिर पर तप रहा था । घाट होने के कारण कार का एसी बन्द था । खिड़कियाँ खुली हुई थीं । खड़ी धूप होने के बावजूद पहाड़ों की हवा बदन को सुकून पहुँचा रही थी । एक ओर पहाड़, उसे काट कर बनाई सड़क और दूसरी तरफ गहरी खाई... खाई की गोद में नन्हे पहाड़ और उनके संग अठखेलियाँ करती नदी.. हर दृश्य अपने आप में अनोखा और सुन्दर .. अगला दृश्य पहले वाले दृश्य से ज्यादा सुन्दर लगता । मैं चुपचाप उन दृश्यों को आँखों से पीती फिर आँखें बन्द कर उन्हें मन ही मन जीती । प्रकृति की गोद में कितनी शांति मिल रही थी । अन्दर-बाहर तीनों जगह शांति तैर रही थी । कार के अन्दर बच्चे ऊँघ रहे थे । पति गाड़ी चलाने में तल्लीन थे । घाट पर ड्राइव करते हुए अतिरिक्त सावधानी की ज़रुरत पड़ती है । बाहर ऐसा लग रहा था पहाड़ भी भरी दोपहरी में धूप से बचने के लिए दम साधे खड़े हों... और तीसरी जगह यानी मेरा मन ... वह भी शांत, विचारों का आवागमन थम चुका था । स्थिर मन से प्रकृति की निस्तब्धता से संगति बिठा ली थी ।

पर मन कहाँ देर तक शांतचित रह पाता है । एक विचार आ धमका -कुछ रह तो नहीं गया.. कुछ छूट तो नहीं गया.. मैं मन ही मन हिसाब लगाने लगी । ज़रुरत का सारा सामान रख लिया न, कुछ भूली तो नहीं ... हम चारों की ज़रुरत के सारे सामान, दवाइयाँ वगैरह सब कुछ रख लिया था । इस बार तो इन्होंने दो दिन पहले ही कन्फर्म कर दिया था कि गोवा जाना है । वर्ना अक्सर दो घंटे का समय देते हैं- तैयार हो जाओ चलना है । और मैं फौजियों की तरह तैयार हो जाती हूँ । इस बार सात दिन का टूर बना के निकले थे गोवा के लिए । मगर मैंने सबके लिए दो जोड़ी कपड़े एक्स्ट्रा रख लिए थे । क्योंकि इनके एक टूर में से दूसरा टूर कब निकल आए पता नहीं । पिछली बार हम जब घर से निकले थे लोनावाला-खंडाला के लिए । वहाँ एक दिन बीताने के बाद जनाब बोले 'चलो गोवा चलते हैं' बेटी भी चहककर बोली 'गो गोवा' और वहाँ हम चार दिन रुके, दो जोड़ी कपड़ों में...।

कैसे ? बताती हूँ- मैं साथ में इस्त्री लेकर गई थी । मैं भी बहुत चालू हूँ । मैं इस्त्री क्यों ले गई थी ? इसके पीछे भी एक कहानी है । उससे पहले हम नासिक गए थे । वहाँ जाने कैसे मेरी बेटी की फ्राक उधड़ गई । एक्स्ट्रा कपड़े थे नहीं । होटल पहुँच कर कपड़े धोये । मगर सूखने में वक्त लगा । सूखे तो बेटी ने तुड़े -मुड़े कपड़े पहनने से साफ इंकार कर दिया । एक पूरा दिन इसी में खराब हो गया था ।

इसलिए अगले टूर के समय मैंने चुपचाप एक इस्त्री साथ में रख ली थी । जो गोवा पहुँचकर बहुत काम आई थी । मेरी एक्स्ट्रा समझदारी पर पति भी खुश हो गए ।

तो ऐसा होता है । घर-गृहस्थी के चक्कर में औरतें एक्स्ट्रा समझदार हो जाती हैं । आखिर इन्सान अपने अनुभवों से ही सीखता है... जो न सीखे वो गंदे कपड़े पहने ।

इस बार जब गोवा जाना पक्का हो गया तो ऑफिस के लिए निकलते हुए मैंने रंजना (परिचय: जो हमारे घर को संभालती है । इन दस सालों में मेरे परिवार की धुरी बन गई है) से

कहा --हम सबके कपड़े पैक कर देना । गोवा जाना है.. और हाँ, मेरी वो ब्लैक कलर की साड़ी भी । इस पर वह हँसी, 'गोवा जा रहे हो कपड़ों की क्या ज़रुरत..।'

उसकी बात पर हम सब हँसे । पति बोले, 'अरे वाह गोवा में तो जैसे तुम साड़ी पहनकर घूमोगी!''

मैंने तर्क दिया, 'क्या पता, क्या ज़रुरत पड़ जाए.. जो चीज़ नहीं होती है, उसी की ज़रुरत पड़ जाती है ।' इस पर मेरे पति वागीश जी खीज कर बोले, 'हाँ, हाँ, दिसम्बर का महीना है । रजाई-गद्दे भी ले चलो, पूरा घर ले चलो...।'

मैं भड़क उठी 'तो फिर कहीं जाने की क्या ज़रुरत है । यहीं घर पर रहो ना ।' बात बढ़ती देख मेरी बेटी भुनभुनाई 'जब देखो, तब..अभी यहाँ झगड़ रहे हो, और चल के वहाँ भी झगड़ना ....' बेटे ने भी हाँ में हाँ मिलाई, 'मेरा मूड ख़राब मत करो ।' उसकी बात पे हम सब हँस दिए । माहौल हल्का हो गया था ।

अब कार में बैठे- बैठे यही सारी बातें याद आ रही थीं । मैं फिर सोचने लगी- कुछ भूली तो नहीं क्यों मेरे दिमाग में कुछ खटक रहा था । जब याद नहीं आया तो मैंने इस बारे में सोचना छोड़ एफ एम रेडियो ऑन कर दिया । घाट समाप्त हो चुका था । घाट खत्म होते ही कार रोक दी गई । बच्चो ने उल्टियाँ कीं । सड़क के सफर में बच्चों को परेशानी होती है । इसलिए वे कार से लम्बी दूरी की यात्रा पसंद नहीं करते । बेटे को आगे की सीट पर बिठा कर मैं पिछली सीट पर आ गई सोने के लिए, मगर नींद कहाँ आती है! फिर भी मैं आँखें बन्द किये पड़ी रही जाने कितने घंटे....महाराष्ट्र की हद खत्म होने को थी । वागीश जी ने आवाज़ देकर हम सबको बताया कि अब हम गोवा में दाखिल होने वाले है । बच्चे खुशी से चिल्लाए । यह सफ़र ख़त्म होने की ख़ुशी थी । फिर भी होटल पहुँचने में कई घंटे ख़र्च हो गए ।

गोवा के कलंगुट बीच पर गोवा टूरिज़्म के रिसोर्ट में हमें एक कॉटेज मिल गया । बेटी खुश हो गई । पिछली बार वह इसी रिसोर्ट में रुकना चाहती थी । मगर हमें बुकिंग नहीं मिली थी । तब उससे कहा था कि अगली बार आएगें तो यहीं रुकेंगे । शुक्र है कि वादा पूरा हो गया ।

कॉटेज में पहुँचकर दोनों बच्चे चेंज कर स्विमिंग पूल के लिए भागे । यहाँ रुकने की एक खास वजह यह भी थी । वागीश जी शावर लेने चले गए । मैं बैग अनपैक करने लगी । मेरी नज़र साड़ी पर पड़ी । जी चाहा पहन लूँ पर जी को रोक लिया कि किसी और समय पहनूँगी । शाम ढल चुकी थी । इसलिए सोचा नाइटी पहनना ठीक रहेगा । पर मुझे नाइटी कहीं मिली ही नहीं । तो यही बात दिमाग में खटक रही थी । नाइटी रखना भूल गई थी... खैर जाने दो इसके बिना काम चला लूँगी ।

आसमान में लगभग पूरा चाँद चमक रहा था । पूर्णिमा को अभी दो दिन बाकी थे । इस बार २४ दिसम्बर को पूर्णिमा पड़ी थी । चाँद की किरणें समन्दर पर ऐसे पड़ रही थीं, जैसे रोशनी का राजमार्ग हो कोई । मन कर रहा था कि इसी रोशनी में चल पड़ूँ तो शायद चाँद तक पहुँच जाऊं ।

तीन दिन तो नॉर्थ गोवा, साऊथ गोवा वैगरह घूमने में चले गए । चौथे दिन सब जमकर सोये । शाम को उठे तो बीच पर जाकर बैठे हम चारों । बच्चे अपने खेल में मग्न थे । आसमान में लगभग पूरा चाँद चमक रहा था । पूर्णिमा को अभी दो दिन बाकी थे । इस बार २४ दिसम्बर को पूर्णिमा पड़ी थी । चाँद की किरणें समन्दर पर ऐसे पड़ रही थीं, जैसे रोशनी का राजमार्ग हो कोई । मन कर रहा था कि इसी रोशनी में चल पड़ूँ तो शायद चाँद तक पहुँच जाऊं । मैंने इनसे कहा 'चलो चाँद पर चहल कदमी कर आएँ ।' जनाब बोले 'आज नहीं मैं बहुत थका हुआ हूँ ।' मैं भुनभुना कर रह गई । शादी के बाद पति-पत्नी एक-दूसरे के रोमांटिक मूड की ऐसी ही वाट लगाते है ।

मैंने रूठकर दूसरी तरफ मुँह घुमा लिया । एक हाथ की दूरी पर दो विदेशी युवतियाँ थी और एक पुरुष भी, मैं उनको ही देखने लगी । मैंने देखा वे एक-दूसरे की फोटो खींच रहे थे । पर तीनों एक साथ फ्रेम में नहीं आ पा रहे थे । उनकी परेशानी देख मैंने अपनी बेटी को उनकी मदद के लिए भेजा । वे बड़े खुश हुए और पाँच मिनट में ही हम घुल-मिल गए । एक युवती जो ज़्यादा मिलनसार थी । उसका नाम लूबा था । उसे देखकर अंदाजा लगाना मुश्किल था कि वह रशियन है । उसके दोनों साथी इरा और जिम शादीशुदा थे । जाने क्यों लूबा को भारतीय संस्कृति में अधिक दिलचस्पी थी ।

लूबा ने बेटी से कहा कि उसे बालीवुड डांस सीखना है । मेरी बेटी भी डांस की शौक़ीन । पीछे सैक पर फिल्मी गाने ही बजते रहते हैं । उस समय 'कजरारे, कजरारे, तेरे काले काले नैना' बज रहा था । बेटी ने उस गाने के स्टेप्स करके दिखाए । दो-तीन मूवमेंट के ही बाद लूबा ने हुबहू नक़ल कर ली । फिर उसने कमर हिलानी सीखी । फिर मैडम ने क्लासिकल डांस की फरमाइश की । बेटी को भरतनाट्यम और कथक के कुछ स्टेप्स आते थे, उसे भी लूबा ने सीख लिया । फिर गरबा, उसमें तो मैं भी शामिल हो गई । गोवा के बीच पर गरबा वह भी विदेशी के साथ कितना फनी ...फिर उसने मेरी बेटी को रशियन डांस सिखाया ।

हम थक कर सुनहरी रेत पर बैठ गए । लूबा ने अपनी टूटी फूटी इंग्लिश में पूछा 'यू इंडियन नाट वेअर साड़ी ....?' मैं मन ही मन हँसी 'तुम लोग तो टू पीस में घूमती हो हम भारतीय नारियाँ ५ मीटर की साड़ियाँ पहन कर घूमें ....वाह...।' भीतरी हँसी चेहरे पर आ गई.... मुझे हँसते देख

उसने पूछा 'वाए लाफ ?'

मैंने उसे समझाया कि टूरिस्ट प्लेस पर कोई औरत साड़ी नहीं पहनना चाहेगी । क्यों ? यह भी समझाया । मेरी बेटी ने तपाक से उससे पूछा 'डू यू वांट टू वेअर साड़ी' उसने झिझकते हुए कहा 'नो, आई वांट टू सी इट ।'

कोई विदेशी हसीना भारतीय साड़ी देखना चाहे तो कोई भारतीय नारी कैसे मना कर सकती है! हम उन्हें अपने रेसोर्ट में ले आए । पति ने रास्ते में मुझे छेड़ते हुए चुटकी ली 'भई वाह, तुम्हारी साड़ी ने तो हिन्दुस्तानियों की इज़्ज़त बचा ली । नहीं तो रूस में भारत की छवि ख़राब हो जाती ।' उनका इंटर नेशनल ताना सुन कर भी मैं मुस्कुरा दी।

मैंने उन्हें अपनी साड़ी दिखाई । दोनों औरतों को बहुत पसंद आई । लोबा की दिलचस्पी देख मैंने उसे साड़ी पहनाई । छरहरे बदन की गोरी-चिट्टी लोबा पर काली साड़ी खूब जँच रही थी । साड़ी में लाल रंग के रेशमी धागे से कढ़ाई की गई थी और सुनहरे सितारे लगे हुए थे । मैंने उसके हाथों में कड़े पहनाए । गले में नेकलेस, बिंदी भी लगाई । हमने उसके कई फोटो भी खींचे, अलग-अलग पोज में । किसी हीरोइन से कम नहीं लग रही थी वह । उसके सिर पर घूँघट रखा तो वह किसी हिन्दुस्तानी दुल्हन की तरह ही शर्मा गई । उसकी वह छवि सिर्फ कैमरे में ही नहीं मेरी आँखों में भी कैद हो गई ।

वे तीनों आपस में आंद्रे का नाम ले रहे थे । मेरे पूछने पर बताया कि आंद्रे और लोबा 'लिव-इन कपल' हैं । बातों-बातों में लूबा ने पूछा कि यहाँ साड़ी कहाँ मिलेगी । यह तो हमें भी नहीं पता था । मेरे पति ने कहा हम कल ढूँढ़ कर बताएँगे वैसे हमने मन ही मन सोच लिया था कि हम उन्हें साड़ी गिफ्ट करेगें ।

लूबा ने अगले दिन आंद्रे के साथ आने का वादा किया और वे चले गए । उस रात हमने आस-पास की दुकानों पर साड़ी ढूँढी वैसे-जैसे रेत में घास ढूँढना । किसी ने बताया मापुसा में हैं दुकानें ।

तभी मेरी बेटी को एक फ्रॉक पसंद आ गई । उसने लेना चाहा पर पति ने डपट दिया, यहाँ से कुछ नहीं । मुंबई में सब कुछ मिलता है । उसे भी बुरा लगा और मुझे भी । फ्राक बड़ी सुन्दर थी मेरी इच्छा हुई थी खरीदने की पर उनकी ना सुनकर मैंने उसे वहीं छोड़ दिया । हम अपने होटल में लौट आए ।

अगले दिन सुबह ११ बजे वे चारों आ गए, आंद्रे हमसे इतने अपनेपन से मिला कि लगा ही नहीं कि हमारे बीच दो देशों की दूरियाँ हैं । लूबा की तरह वह भी बिलकुल अपना-सा लगा । इरा और जिम के साथ ऐसा महसूस नहीं हुआ ।

हमने एक साथ ब्रेकफास्ट किया और फिर मिलने का वादा कर विदा हो गए । शाम को हम लोग क्रूज़ पर गए । वहाँ से लौटते हुए फिर बच्चे इधर-उधर चीज़ें देखकर ललचाने लगे । मुझे भी एक नाइटी खरीदनी थी पर कहे कौन? सुने कौन ? 'मुंबई में सब मिलता है' बेटा फूटबाल लेने पर अड़ गया । मैंने उसे डाँटा जैसे वे डाँटते है 'घर पर है ना !'

बेटा बोला 'नहीं वो पुरानी हो गई । मुझे गोवा में फुटबाल चाहिए ।'

मैंने उसे बहलाना चाहा, 'बेटा, अगली बार हम आयेंगे तो ले दूँगी ।'

इतना सुनते ही बेटी फट पड़ी 'क्या अगली बार ! मैंने पिछली बार आपसे सैंड किट माँगा था तो आपने बोला- अगली बार आएँगे तो ले दूँगी और अब मैं बड़ी हो गई हूँ अब मुझे इसकी ज़रूरत नहीं । अगली बार इसको भी फुटबाल नहीं चाहिए तो.. और अगली बार कभी नहीं आता ।'

उसकी बात में वज़न था । मैं सोच में पड़ गई । हम मध्यमवर्गीय अपनी ज़रूरतों और इच्छाओं को अगली बार के लिए स्थगित कर देते हैं । और सच में वह अगली बार कभी नहीं आता । पर मैंने सोच लिया था कि बच्चों की इच्छाएँ अगली बार के लिए नहीं टालूँगी ।

अगले दिन सुबह-सुबह हम अरंबोल बीच पर निकल गए । यह बीच विदेशियों में लोक प्रिय है ।

दिसम्बर महीने में दुनिया के कई देश बर्फ से जम जाते हैं । सो कई विदेशी गोवा चले आते है, ठण्ड से बचने के लिए, साइबेरियन पक्षियों की तरह । यहाँ के बीच के किनारे बने छोटे- छोटे कमरे उनके बजट में फिट बैठते हैं । कई सैलानी तो पूरी विंटर सीजन यहीं बिताकर रवाना होते हैं । ऐसे में बड़े होटलों में रहना उनके बस की बात नहीं होती । इसलिए अरंबोल बीच पर ज़्यादातर विदेशी सैलानी अपना डेरा जमा लेते हैं । उनको बेफिक्र नंग-धड़ंग देखना हिन्दुस्तानियों के लिए एक अजूबा ही होता है ।

यहाँ सड़क किनारे लाइन से लगी दुकानों में लेटेस्ट फैशन के कपड़े और शोपीस देखकर हर किसी का मन ललचा जाता है । मगर दाम सुनकर मन बुझ जाता है ।

अरंबोल बीच पर जाते हुए हर दुकान पर

सुमन सारस्वत

रेडियो, दूरदर्शन और पत्र-पत्रिकाओं के लिए लिखते-लिखते पत्रकारिता में डिप्लोमा कर जनसत्ता मुंबई में उपसंपादक की नौकरी की. जब २००२ में जनसत्ता का मुंबई संस्करण बंद हुआ तो स्वेच्छा सेवानिवृत्ति के बाद रचनात्मक लेखन के साथ-साथ हिंदी साप्ताहिक 'वाग्धारा' का संपादन एवं प्रबंधन प्रारंभ किया, जो अब तक जारी है. सुमन सारस्वत की कई कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं. इन कहानियों में परिवार और नौकरी के बीच संघर्ष करती, अपने अस्तित्व को सहेजती आम स्त्री पर केंद्रित विषय वस्तु आम औरत के खास जज़्बात को मुखरता प्रदान करते हैं. मूलतः विद्रोह की ये कहानियाँ 'आधी दुनिया' के पीड़ाभोग को रेखांकित ही नहीं करतीं बल्कि उसे ऐसे मुकाम तक ले जाती हैं जहां अनिर्णय से जूझती महिलाओं को एकाएक निर्णय लेने की ताकत मिलती है.

संपर्क : 504-ए, किंगस्टन, हाई स्ट्रीट,
हीरानंदानी गार्डन, पवई, मुम्बई-76
ई मेल:
sumansaraswat@gmail.com

मेरी बेटी ठिठक जाती और बेटा खिलौनों की दुकान पर । मैंने बेटी से कहा कि लौटते हुए ले दूँगी ।

अरंबोल बीच के दूसरे छोर पर चट्टानों के पीछे एक स्वीट लेक है । यानी समुद्र किनारे झील! है न कुदरत का करिश्मा । यह बहुत कम हिन्दुस्तानियों को पता है इसलिए वहाँ ज़्यादा किच-किच नहीं होती । यह विदेशी सैलानियों का एक आदर्श आरामगाह है । हमें पहले से पता था । चट्टानों को पार कर हम वहीं पहुँचे । ऐसा लगा कि हिंदुस्तान के अन्दर स्विट्ज़रलैंड के किसी बीच पर पहुँच गए हों । पानी देखते ही दोनों बच्चे स्वीम सूट पहन झील में कूद गए । विदेशियों के साथ वे घंटों पानी में तैरते-खेलते रहे । बेटी ने कईयों से दोस्ती भी कर ली ।

जब धूप बढ़ने लगी तो हम लौट पड़े । रास्ते में बेटा फिर फुटबाल के लिए अड़ गया । बेटी को लेकर मैं एक दुकान की तरफ बढ़ गई । दो-तीन दुकानों पर मोलभाव करते हुए उसके लिए दो टी शर्ट खरीदीं । अगली दुकान पर उसके लिए साटन की फ्रॉक खरीदी । एक नाइटी मुझे पसंद आई, मैंने अपने लिए ख़रीद ली । मैंने बेटी से ताकीद की 'देख पापा से मत कहना...।' मगर वह बहस करने लगी 'मम्मी आप इतना डरती क्यों हैं...।' तब तक पति और बेटा आते हुए दिखे । बेटे के हाथ में फुटबॉल थी । हम आगे पार्किंग की ओर बढ़ गए जहाँ हमारी कार थी । वहाँ भी एक दुकान थी कपड़ों की । पति उस ओर बढ़ने लगे । मैंने पूछा, ' क्यों ? ' बोले, 'इसके लिए फ्रॉक खरीद लें ।' मैं शरारत में मुस्कुराई 'हमने खरीद ली ।'

वे बोले, 'अच्छा, चलो अपने लिए भी एक खरीद लो । ' मेरी मुस्कराहट में शरारत और भी सीना तान कर खड़ी हो गई ....

वे भी मुस्कुराए 'भई वाह ! यह अच्छा किया, तुम लोग मुझसे पूछा मत करो । जो खरीदना हो, ले लिया करो ।'

रात को डिनर के बाद हम बीच पर आ गए, दोनो बाप-बेटे फुटबाल खेलने लगे ।

बेटी अपने मन की उलझनें मुझसे शेयर करने लगी । उसे लगता है वह १४ साल की हो गई है तो समझदार भी हो गई है । अब वह जो भी सोचेगी, सही ही सोचेगी । इतनी बड़ी लड़की से ग़लती तो हो ही नहीं सकती है । सच में माँ जितनी हो गई है तो माँ की तरह मैच्योर भी । इसलिए कभी-कभी वह माँ को भी नसीहत देने से नहीं चूकती कि अपनी लाइफ अपनी तरह जिओ । क्या हर चीज़ में पापा से पूछना ज़रूरी है, अमेरिका में देखो-बच्चे अपना डिसीज़न खुद लेते हैं ।

मैंने उसे तर्क दिया- 'नहीं छोटी- मोटी बात अलग है । पर उन्हें भी अपने पैरेंट्स से पूछना पड़ना है । औरतों को अपने पतियों की परमिशन लेनी पड़ती है ।'

इस पर वह खीज उठती 'मम्मी, आपको तो कुछ भी पता नहीं ।' मैंने फिर कहा 'हाँ... हाँ तुझे तो सब पता है । पूरी दुनिया घूम चुकी है मेरी नानी अम्मी! चल चुपचाप स्टडी कर, अभी-अभी तो अंडे में से निकली है ।' वह रुआँसी हो जाती 'मैं कोई चिकन थोड़े ही हूँ ।' और मैं अक्सर हँस देती ।

इस समय बीच पर बैठे-बैठे वह ऐसी ही कोई डिबेट करना चाह रही थी, और मेरा मन चाँद में अटक गया था । आज चतुर्दशी यानी चौदहवीं का चाँद । चाँद की सुनहरी रोशनी से समुद्र भी सुनहरा हो चला था । कलंगुट बीच की सुनहरी बालू और भी सुनहरी होकर झिलमिलाने लगी थी ।

आज २४ दिसम्बर २००९ थी यानी क्रिसमस ईव । क्रिसमस के त्यौहार पर गोवा में चल-पहल बढ़ गई थी । आतंकी हमले के मद्देनज़र चप्पे-चप्पे पर फौजी जवान दिख रहे थे ।

मुझे चाँद को निहारता देख वह भी चाँद को निहारने लगी । फिर बोली 'देखो मम्मी, सोने की थाली ...।' मैं मुस्कुराई, 'जब शांत मन से बैठो तो इसी तरह के इमैजिनेशंस आते हैं ।' और वह सच में एकाग्र होने की कोशिश करने लगी । तभी उसके सेलफ़ोन की घंटी बजी । लूबा का फोन था । उसने हम सबको क्रिसमस विश करने के लिए फोन किया था । हमने बारी-बारी से लूबा और आंद्रे से बात की । मेरे पति और आंद्रे ने भी बात की । फोन पर ही उन दोनों ने अगले दिन मापुसा जाने का प्रोग्राम बना लिया ।

दूसरे दिन तय समय से दो घंटे लेट आए लूबा और आंद्रे । उन्होंने बताया कि रात में इरा की तबीयत ख़राब हो गई थी इसलिए उसे हॉस्पिटल में एडमिट कराया और वे दोनों अब उससे मिलकर आ रहे हैं । और जल्दी ही उन्हें फिर जाना होगा ।

हम लोग मापुसा पहुँचे । गोवा के शहरों में से एक । यहाँ पर मार्केट में एक शोरुम मिल गया । मैं और लूबा साड़ियाँ देखने लगे । मैंने पहले उसे लेटेस्ट फैशन की सिंथेटिक साड़ियाँ दिखाईं पर उसे पसंद नहीं आईं । उसने कहा, 'आई वांट इंडियन टाइप साड़ी!' मैं समझ गई और दुकानदार भी । दुकानदार ने साउथ सिल्क की साड़ियाँ निकालीं । इरा के लिए लूबा ने नीले रंग की साड़ी पसंद की और अपने लिए हरे रंग की । तभी दुकानदार ने गोल्डन बार्डर और पल्लू वाली एक काले रंग की साड़ी निकाली । इस साड़ी को देखकर लूबा बच्चे की तरह मचल उठी । उसे वही साड़ी चाहिए थी । लूबा इंडिया में रहते ही वह साड़ी पहनना चाहती थी । इसलिए हमने दुकानदार को फाल बिडिंग कराने के लिए दे दिया, इस में आधे घंटे का समय लगना था । ज़्यादा समय लगता देख आंद्रे ने हॉस्पिटल जाने का निर्णय लिया । आंद्रे के जाने के बाद मैं लूबा को लेकर चूड़ियों की दुकान ढूंढ़ने लगी । काफी दूर जाकर दुकान मिली । आधे घंटे से ज़्यादा हो गया था । आंद्रे का दो बार फोन भी आ गया कि वह जल्दी हॉस्पिटल पहुँचे । लूबा भी चिंतित थी ।

मैंने उसके लिए चूड़ियाँ और बिंदी खरीदी और वापस साड़ियों की दुकान में आ गए । आंद्रे बाहर इंतज़ार कर रहा था । लूबा के चेहरे पर डर की एक हल्की सी रेखा उभरी । उसे दूर से देख लूबा मुझ से बोली, 'डोंट टेल टू आंद्रे ।' मैं और विधि हम दोनों एक दूसरे का चेहरा देखने लगीं ।

बेटी के चेहरे से साफ़ झलक रहा था कि वह समझ गई थी- औरतों की हालत एक जैसी ही है - चाहे इण्डिया हो या रशिया .....।

कहानी

गुल्ली- डंडा और सियासतदारी

डॉ. मनोज श्रीवास्तव (भारत)

सियासत का सुरूर जिस आदमी पर चढ़ जाए, वह इंसानियत की नाज़ुक सरहद लाँघ कर सारी शैतानी तहज़ीब ओढ़ लेता है । कौन कहता है कि कोई सियासतदार अपने कुटुंब-कुनबे, जाति-पाति, ढोंग-पाखंड और धार्मिक आडम्बर के मकड़जाल में ही उलझा रहता है? दरअसल, खुदगर्ज़ी, ग़ुरूर और खुशामद-पसंदी तीनों ही उनकी समूची शख्सियत का ताना- बाना बुनते हैं । इस सुरूर में वह मदमस्त होकर यह भी भूल जाता है कि वह ब्राह्मण है या श्रमण, निखालिस सनातनी है या वर्णसंकर, बलित है या दलित, मर्द है या औरत । उसे तो बस, इतना ही याद रहता है कि उसे अपने तिकड़म से येन-केन-प्रकारेण आवाम की निग़ाहों में चढ़े रहना है । जब तक उसे सत्ता की रबड़ी मयस्सर नहीं हो जाती, उसके लिए लोग- बाग जनता-जनार्दन होते हैं और जब वह सत्ता की रबड़ी -मलाई में आकंठ निमग्न हो जाता है, उसके लिए वे ही गाय-गोरु, भेड़-बकरी सरीखे दिखने लगते हैं । इस निरीह जनता नामक दुधारू गाय को हर पाँचवें साल खूंटे में बाँधने के लिए एक जम्हूरियाई स्वांग रचा जाता है । और जब वह खूँटे में बन्ध जाती है तो उसके पैरों को भी एक-दूसरे से जकड़ कर इस तरह बाँध दिया जाता है कि वह पगुराने-रम्हाने के सिवाय कुछ न कर सके । फिर, बेखौफ होकर उसके थन से दूध की आखिरी बूंद तक निचोड़-निचोड़ दूहा ली जाती है ।

यह बात अक्षरशः हल्कू पासवान पर लागू होती है जो पहले तो मसुहर टोले के अम्बेडकर गाँव में तब्दील होने तक टोले के एक-एक आदमी का हमदर्द बना फिरता था । पर, जब वह अपने मामा धनेसर पासवान से सालभर तक राजनीति का सबक सीखकर गाँव वापस आया तो उसने गिरगिट की तरह रंग बदलना शुरू कर दिया । उसने मुसहर टोला के मसीहा धनीराम मिसिर के खिलाफ़ ऐसी साज़िश रची कि उन्हें परिवार समेत जानबुझकर लगाई गई आग की खुराक बना दिया और मीडिया में यह अफ़वाह फैला दिया कि उसने और उसके गाँववालों ने किन्हीं अज्ञात कारणों से लगी आग से उन्हें बचाने के लिए जी-जान से कोशिश की थी; पर, दुष्टदैव के आगे किसका वश चलता है! उसके इस काइयाँ करतूत से उसके मामा को भी आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा । उसने उसे रातों-रात नेता बनने पर हार्दिक बधाई दी ।

धनीराम मिसिर सचमुच पूरे मुसहर टोला के ख़ैर-ख़्वाह थे । उन्होंने अपने ब्राह्मणी अहं को तजकर मुसहरों की ज़िन्दगी में सुधार लाने के लिए क्या-क्या नहीं किया था ? उनकी बढ़ती लोकप्रियता के चलते हल्कू लड़कपन से ही उनसे इतना जला-भुना रहने लगा था कि मिसिर जी उसे फूटी आँख नहीं सुहाते थे । वाकई मिसिर जी कोई नेता का तगमा ओढ़ने के लिए यह सब नहीं कर रहे थे । दरअसल, उनमें तो इंसानियत कूट- कूट कर भरी हुई थी । दीन-दुखियों को देखकर उनका मन पसीज़ जाता था और वह सारे सनातनी ताम-झाम भूलकर मानवता की सेवा में दत्तचित हो जाते थे । बस, उन्हें तो दो जून की रोटी चाहिए थे और इसके बदले में वह अपने होठों की मुस्कान जन-जन को देना चाहते थे । उन्होंने अपनी मुस्कान दी भी; पर विधि के विधान के आगे वह बेबस हो गए और तथाकथित दलित लोगों के बीच पल-बढ़ रहे डाह के कारण, सियासी शैतान के कौर बन गए । दलित बाहुबलियों ने उन्हें रौंदकर मच्छर की तरह मसल डाला ।

इस सियासतदारी में ब्राह्मण वही होता है जो शक्ति-सम्पन्न होता है; जन्म से यहाँ कोई ब्राह्मण नहीं होता । निर्बल ब्राह्मण को तो उसी तरह दलन का शिकार होना पड़ता है जिस तरह तथाकथित शूद्र हुआ करते हैं, या हुआ करते थे । मिसिरजी को पहले तो अपने ब्राह्मण- बहुल बम्हरौली गाँव में केवल इसलिए दलन का शिकार होना पड़ा क्योंकि उनकी बहन मधुरिया ने कुजात रमई तेली के साथ भाग कर उसके साथ ब्याह रचाया था । इसके दुष्परिणामस्वरुप,

उन्हें अपने ब्राह्मण समुदाय से इस कदर तिरस्कृत होना पड़ा था कि वह कहीं भी मुँह दिखाने के काबिल नहीं रह पाए थे । किसी तरह उन्होंने मुसहर टोले में आकर मुँह छिपाया । बम्हरौली गाँववालों ने उन्हें मूड़ी-पूँछ समेत सपरिवार अग्निदेव को बलि चढ़ाने की कोशिश की । पर, किसी तरह घर के पिछवाड़े से कूद-फाँदकर और लुक-छिप कर उन्होंने मुसहर टोले में पनाह ली । इस तरह, अपनी और अपने बाल-बच्चों की जान बचाई ।

सियासतदारी में पहले तो आदमी का कुनबा बदलता है, फिर जाति और धर्म, उसके बाद उसकी पहचान ही बदल जाती है । उसके छोटे-मोटे कार्यों को रेखांकित करके उस पर बड़प्पन का मुलम्मा चढ़ाने की कवायद कुछ इस तरह की जाती है कि उसे अवतारी पुरुष माना जाने लगता है । बित्ते-भर का हल्कू लौंडा, पहले तो हल्देव भैया बना, फिर हल्देव सत्यार्थी और उसके बाद सत्यार्थी स्वामी के रूप में ताड़ का पेड़ बन गया । अपने नाम में लगातार परिवर्तन करके उसने आख़िरकार आम आदमी को इस वहम में डाल ही दिया कि हो- न- हो यह किसी राजघराने का महान समाजसेवी है जिसने अपना ऐश्वर्य और सारे ठाट-बाट त्याग कर अपना सर्वस्व दीन-दुखियों की सेवा में अर्पित कर दिया है ।

मुसहर टोला के नाम का चोला छोड़कर अम्बेडकर गाँव बन चुके इस गाँव ने जब नाती-पूत समेत बौद्ध धर्म अपना लिया तो हल्देव सत्यार्थी को अपनी कुर्सी डगमगाती सी जान पड़ी क्योंकि इस सामूहिक बौद्धिकरण से वह बिल्कुल अनजान थे । या, यूँ ही कहना चाहिए कि उन्हें इस बात पर हैरानी हो रही थी कि इस गाँव में उनकी ग़ैर-हाज़िरी में ऐसी राजनीति खेली जा रही है जिससे उन्हीं को गच्चा दिया जा सकता है। गाँव का बच्चा-बच्चा राजनीति ऐसे खेलने लगा है जैसे कि कंचा-गोली । इन्हें भी समझ में आने लगा है कि राजनीति एक रोज़गार-धंधा है जिसमें तिकड़म लगाकर और तीन-पाँच करके क़िस्मत चमकाई जा सकती है । स्लेट-पेंसिल, कापी-किताब लेकर स्कूल-पाठशाला जाने का मतलब है फ़िज़ूल में अपने

सियासतदारी में पहले तो आदमी का कुनबा बदलता है, फिर जाति और धर्म, उसके बाद उसकी पहचान ही बदल जाती है । उसके छोटे-मोटे कार्यों को रेखांकित करके उस पर बड़प्पन का मुलम्मा चढ़ाने की कवायद कुछ इस तरह की जाती है कि उसे अवतारी पुरुष माना जाने लगता है ।

भेजे का कबाड़ा निकालना । इसलिए,गाँव में जो धार्मिक रुझान आया है, वह इसी राजनीतिक सुगबुगाहट के कारण आया है । तभी तो जहाँ उनकी मर्ज़ी के बिना एक भी पत्ता हिलने की गुस्ताख़ी नहीं कर सकता था, वहीं उन्हें छोड़, सभी ने अपना धर्म बदलने की ज़हमत खुशी- खुशी उठाई । बहरहाल उन्हें इस बात का कतई मलाल नहीं हो रहा था कि सभी मुसहरों ने बौद्ध धर्म क्यों अपना लिया है । पर उन्हें यह बात हज़म नहीं हो पा रही थी कि एक नाचीज़-सा नौजवान-बिरजू का मनोबल इतना बढ़ गया कि उसने तो पहले सारे गाँववालों को बरगलाकर उनका धर्म-परिवर्तन करवाया; फिर सियासतदारी में उनसे पंजा लड़ाने की चुनौती देने की गुस्ताख़ी कर रहा है । यानी, यहाँ जो कुछ हो रहा है, वह बिरजू की मर्ज़ी से हो रहा है । उन्हें यह डर अन्दर से साल रहा था कि कहीं बिरजू पालिटिक्स के रणक्षेत्र में उन्हें मात न दे दे! वह भुनभुनाने लगे ''हमें यह सबक कभी भी नहीं भूलना चाहिए कि कनखजूरा देखने में पिद्दी-सा होता; लेकिन कान में घुसकर वह असह्य पीड़ा का सबब बनता है ।''

उन्हें तो यह पता ही था कि गाँववालों की मदद के बगैर विधायक की कुर्सी नसीब नहीं होने वाली थी । मतदान की रात जबकि मतपेटियाँ डाक बंगले में रखी गई थी, उनकी हेराफेरी करने में गाँव के एक-एक आदमी ने जान पर खेलकर अहम् रोल अदा किया था । तभी तो सत्यार्थीजी ने अपने मामा धनेसर की ज़मानत जब्त करवाकर यह साबित कर दिया कि सियासतसरी में कोई किसी का सगा नहीं होता । जिस आदमी ने सत्यार्थी जी को राजनीति का क ख ग पढ़ाया । उसे ही उन्होंने धूल में मिला दिया । उनकी माई कलावती को भी अपने बेटे के इस काले करतूत से एकदम बदहज़मी हो गई । पर, वह कर भी क्या सकती थी? एक ऐसे मर्द के आगे उसकी एक न चली जो उसी का लाडला बेटा है और जिसने उसके ही भाई और अपने सगे मामा की चिता सजाई है ।

यों तो गाँववालों को यह बात बिल्कुल अखर रही थी कि उन्हीं की बिरादरी का एक आदमी, जिसकी समाजिक और राजनीतिक प्रतिष्ठा में दिन-दूनी और रात चौगुनी बरकत हो रही है, अब वह केवल मनुवादियों का प्रबल समर्थक हो गया है । इतना ही नहीं, एक ब्राह्मणी से प्रेम-प्रपंच खेलकर और उसके बाद उससे ब्याह रचाकर इतरा रहा है जबकि उसकी पहली लुगाई जिन्दा है जिसकी क़ाबलियत और गुण के सारे लोग बरसों से कायल रहे हैं । बेशक! सत्यार्थीजी के इस नागवार हरकत से गाँव वालों का रह-रहकर उबाल खाना लाज़मी था ।

लेकिन, गिद्ध की नज़र रखने वाले सत्यार्थीजी सारे गाँव की नब्ज़ थामे हुए हालात के संगीन होने से अच्छी तरह वाकिफ थे । इसलिए, वह कोई ऐसी चाल चलने की ताक में थे कि वह सियासी कबड्डी में प्रतिपक्षी के सभी गुइयाँ को अपने वश में कर लें और वे सभी जानबूझकर अपनी पराजय भी स्वीकार कर लें । वह कोई अनाड़ी खिलाड़ी तो है नहीं कि साँप को मारने के प्रयास में उनसे उनकी लाठी ही टूट जाए और साँप उन्हें उछल कर डस ले । वह ऐन वक्त पर जबकि बिरजू जेल की हवा खा रहा था जिस कारण सारे गाँववाले उनसे बेहद ख़फ़ा चल रहे थे, अपने हिन्दुत्त्व की केंचुल छोड़कर बौद्ध बन गए । लोगबाग हैरत के समन्दर में डुबकी लगाने लगे कि मिसिरजी का यह अंधभक्त पाखंडी हिन्दू, अचानक बौद्ध कैसे बन गया ! यही नहीं उसकी दूसरी लुगाई ने भी बौद्ध बनना सहर्ष स्वीकार कर लिया जो शांडिल्य गौत्र के एक खांटी बाँभन परिवार

की बिटिया थी । पर, सत्यार्थीजी तो यह सोच-सोचकर बड़े चौड़े हो रहे थे उन्होंने नौजवान नेता बिरजू का फन उठने से पहले ही उसे कुचल दिया और अपनी तिकड़म की संड़सी से उसके ज़हर उगलने वालों दाँतों को उखाड़ फेंका ।

जिस स्थान पर गाँववालों ने खुद हल्कू (सत्यार्थीजी) द्वारा फैलाए गए जातीय द्वेष में अन्धे होकर अपने दिल को ठंडक पहुँचाने के लिए मिसिरजी के घर की सपरिवार चिता जलाई थी, वहाँ सत्यार्थी ने पहले तो धनीराम मिसिर की याद में एक शहीद स्मारक बनवाया । फिर, वह वहाँ रोज़ भिनसारे जाकर मिसिरजी की आत्मा की शांति के लिए उनकी मूर्ति के आगे ध्यानमग्न बैठकर पूजा-अर्चना करने लगे । लेकिन यह सब उनका सियासी कर्मकांड था जिसे भुच्च ग्रामीण क्या समझ पाते? दूसरे गाँव-जवार के स्वर्ण लोग उनके इस बदले हुए रूप को देख, यह कह-सुन रह थे कि... 'हो-न-हो , सत्यार्थीजी पिछले जन्म में कोई बड़े संत-महात्मा रहे होंगें, तभी तो वह एक बाँभन का पाँव इतने नेम-धर्म से रोज़ पखारते है...' । जनम कुंडली और पतरा बाँचने वाले कुछ ब्राह्मण यह साबित करने पर तुले हुए थे कि पिछली कई योनियों में सत्यार्थीजी कुलीन ब्राह्मण घराने में पैदा हुए थे जहाँ का संस्कार इस जन्म में भी उनके साथ है । सत्यार्थीजी भी अपना भाग्यफल जानने के लिए बम्हरौली गाँव के ज्योतिषियों के यहाँ बार-बार जाने से बाज नहीं आ रहे थे । उनके इस आचरण पर सारे बाँभन उन पर जान लुटा रहे थे । स्वर्ण उनकी तारीफ़ों के पुल बाँधते नहीं अधा रहे थे । लेकिन, उनके प्रति सवर्णों और खासकर ब्राह्मणों की बढ़ती हमदर्दी से अंबेडकर गाँव के सारे दलित लोग उनसे खार खा रहे थे ।

इसलिए ,बिरजू के नेतृत्व में गाँववासियों ने सत्यार्थीजी को पटखनी देने के लिए धुआंधार बग़ावत का झन्डा खड़ा कर दिया और उनसे कोई राय-सलाह किये बिना, बिरजू के कहने पर हिन्दू धर्म पर लात मार दी तथा 'बुद्धम शरणम गच्छामि' बाँचते हुए बौद्ध कर्मकांड अपना लिए ।

पर सत्यार्थीजी ऐन वक्त पर सम्भल गए और जब उन पर ब्राह्मणों का पिट्ठू होने का दोष मढ़ा गया तो उन्होंने झटपट शहीद स्मारक को अंबेडकर पार्क में तब्दील कर दिया । फिर, वह घर-घर घूमकर यह मुनादी करने लगे कि 'हम तो लड़कपन से अंबेडकर-भक्त रहे हैं । सवर्णों का समर्थन हासिल करने के लिए मिसिर-भक्त होने का हम तो सिरफ़ नौटंकी खेलते रहे हैं ताकि दमदार नेता बनकर अपनी जाति और समाज का भला कर सकें । हमारा मकसद सवर्णों को किसी प्रकार से कोई फायदा पहुँचाना नहीं रहा है, बल्कि उनके समर्थन को अपनी बिरादरी के हित में भुनाना रहा है ।

लेकिन, उन्हें यह बात पच नहीं रही थी कि गाँव के एक टुटपुंजिये नेता यानी बिरजू ने उनकी मान-मर्यादा में सेंध लगाई है । उन्हें न तो अंबेडकर से, न ही मिसिर से कुछ लेना-देना है । उन्हें तो बस, इस बात कि फिक्र थी कि किस तरह सियासतदारी में अव्वल बने रहें । कोई भी ऐरा-गैरा उनके आगे सिर उठाने की ढिठाई न कर सके । इसलिए, उन्होंने बिरजू के अहम् को चकनाचूर करने के लिए एक षडयंत्र रचा । एक दिन अपनी मर्सिडीज गाड़ी को पार्क में अंबेडकर की मूर्ति से जानबूझकर भिड़ा कर मूर्ति को चकनाचूर कर दिया । जो मूर्ति बिरजू समेत सारे गाँव का गुरूर थी, उसे उन्होंने धूल-धूसरित कर दिया । खुद तो गाड़ी की ब्रेक फेल होने का बहाना करके ड्राइवर समेत उस दुर्घटना से बाल-बाल बचने का नाटक खेला । फिर, मौका मिलते ही गाँव की पंचायत को ठेंगा दिखाकर खुद को पाक-साफ साबित भी कर दिया और अपने प्रतिद्वंदी बिरजू को एक फ़र्ज़ी रेप केस में फँसाकर जेल का रास्ता दिखा दिया । जब तक बिरजू जेल में बन्द रहा, वह सत्यार्थीजी से बदला लेने का सपना ही पलता-पोस्ता रहा । दरअसल, बिरजू ने गाँव की छोटी-मोटी पंचायती राजनीति में दस्तक देकर आगे बढ़ने का सबक सत्यार्थी से ही लिया था । पर, उसकी तो गर्दन ही उमेठ दी गई । उसे लगा कि जैसे वह कोई भयानक सपना देख रहा है । वह हक्का-बक्का रह गया । सत्यार्थीजी ने उसे चारों खाना चित कर दिया, उसी की लाठी उसी के सिर पर दे मारी । जिस व्यक्ति ने उन्हें पंचायत के कटघरे में खड़ा किया, उसे उन्होंने हवालात में डलवा दिया । गाँव वालों की भी उनके सामने एक न चली । पुलिस बिरजू को हथकड़ी पहनाकर रफू-चक्कर हो गई जबकि सब एक-दूसरे का मुँह ताकते रह गए । सत्यार्थीजी मांगुर मछरी की भाँति अपनी धारदार पूँछ से उनके हाथों को लहूलुहान कर दिया और उनके चंगुल से फिसलकर महफूज़ हो गए ।

पर सत्यार्थीजी को अपनी इस चाल का नतीजा अपने अनुकूल नहीं लगा । जब जेल में

डॉ. मनोज श्रीवास्तव

जन्म: वाराणसी, उत्तर प्रदेश.
शिक्षा: स्नाकोत्तर अंग्रेजी साहित्य, पी.एच. डी. अंग्रेजी साहित्य, बी. एच. यू. वाराणसी।

कृतियाँ :
पगडंडियाँ (काव्य संग्रह), अक्ल का फलसफा (व्यंग्य संग्रह), चाहता हूँ पागल भीड़ (काव्य संग्रह), अपूर्णा (कहानी संकलन), युगकथा (कहानी संकलन), पगली का इंक़लाब (कहानी संग्रह), धर्मचक्र राजचक्र (कहानी संग्रह), द रिपिल्ज आफ गंगा (अंग्रेजी नाटक) । वर्तमान सहित्य, व्यंग्य यात्रा, हिंदी चेतना, लमही, आजकल सहित सभी प्रमुख पत्र पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं ।

सम्मान: भगवत प्रसाद स्मृति कहानी सम्मान, ब्लिट्स द्वारा कई बार बेस्ट पोएट आफ द वीक घोषित, राजभाषा संस्थान द्वारा सम्मानित, नूतन प्रतिबिंब (राज्यसभा की पत्रिका) के भूतपूर्व संपादक ।
संप्रति-राज्यसभा के संपादन और अनुवाद सेवा में सहायक निदेशक के पद पर कार्यरत ।
संपर्क:-
drmanojs5@gmail.com
srivastava_manoj@hotmail.com

लेकिन, गिद्ध की नज़र रखने वाले सत्यार्थीजी सारे गाँव की नब्ज़ थामे हुए हालात के संगीन होने से अच्छी तरह वाकिफ थे । इसलिए, वह कोई ऐसी चाल चलने की ताक में थे कि वह सियासी कबड्डी में प्रतिपक्षी के सभी गुइयाँ को अपने वश में कर लें और वे सभी जानबूझकर अपनी पराजय भी स्वीकार कर लें । वह कोई अनाड़ी खिलाड़ी तो है नहीं कि साँप को मारने के प्रयास में उनसे उनकी लाठी ही टूट जाए और साँप उन्हें उछल कर डस ले ।

सड़ रहे बिरजू को अपना आदर्श मानने वाले ग्रामीण उनकी जान के प्यासे बन गए क्योंकि उन्होंने ही बिरजू को जेल का रास्ता दिखाया था, तो उन्हें अपनी ग़लती का एहसास हुआ कि बिरजू को अपना दुश्मन बनाकर वह एक नाचीज़ आदमी को बेवजह लोकप्रिय बना रहे हैं । उन्होंने पलक झपकते ही अपना पैंतरा बदला । वह सीधे प्रदेश की राजधानी गए और अपने प्रभाव से बिरजू को रिहा कराने का फरमान बाकायदा मुख्यमंत्री जी से लेकर सीधे उसके पास जेल में जा धमके । हवालत में पड़ा बिरजू उन्हें अपने समाने देख, एक दम बौरा गया और भूखे हाथी की तरह चिंघाड़ उठा, 'तेरी भैन को! अपने काले करतूत की सज़ा हम पर थोप कर अब यहाँ कहे आया है? हमारी खिल्ली उड़ाने आया है क्या?'

उसके बाद जब जेल के सिपहसालारों ने बिरजू की कोठरी का ताला खोला, वह अपने सामने सत्यार्थीजी को खड़ा देख, सकपका गया कि आखिर माजरा क्या है । जिस गेहूँवन साँप ने उसे डँसा था, वही उसका ज़हर निकालने क्यों आया है? गुस्से में उसके शरीर में रक्त का परवाह बिजली की गति से चलने लगा । पर, इसके पहले की बिरजू साँड की तरह अपने सींग सत्यार्थीजी के पेट में घुसेड़ देता, उनके बॉडी गार्डों ने उसे चारों ओर से दबोच लिया ।

तब सत्यार्थीजी अंगड़ाई लेते हुए कुटिलता से मुस्कुरा उठे ''अरे बुड़भक! तू रहा ढोल-गँवार ही । इ सब सजा जो तुम भुगत चुके हो न, इससे तुम्हारा ही भला होने वाला है । आग में तप के ही सोना निखरता है ।''

फिर, जब उन्होंने उसके चेहरे पर अपनी कुटिल नज़र गड़ाई तो उसकी सारी उत्तेजना फुस्स बोल गई ।

'ऊ कईसे?' बिरजू ने अचरज से अपना मुँह बा दिया ।

''ऊ आइसे कि हम ठहरे गुरु चाणक्य के सुपर चेला । जदी हम तुमको पाहिले ही बता देते कि हवालात से रिहा होने के बाद तुम नेता बन जायोगे तो तुमको हमारे बचन पर कईसे बिस्वास होता । अब ई बूला लो कि जब तुम इंहा से छुटके अपने गाँव जाओगे तो सारे गाँव वाले तुम्हारी इतनी जय-जयकार करेंगें कि तुम खुसी के मारे बौरा जाओगे'' सत्यार्थीजी ने अपना सीना चौड़ा करते हुए अपनी मूंछों पर कई बार ताव दिया ।

बिरजू को उनकी सारी बातें किसी अनबूझ पहेली की तरह लग रही थीं । ताज्जुब से उसका मुँह खुलकर और बड़ा हो गया, ''तुम हमको बना रहे हो क्या?''

उन्होंने गुमान में ऐंठ रहे बिरजू के कंधे पर अपना हाथ रखा,''हम तुमको जेल भेजने का जो चाल चले थे, उससे तुम्हारा कद ऊँचा हो गया है । तुम्हारी नेता बनने की ख्वाहिश सचमुच पूरी हो गई है । हाँ, तुमको कुछ कष्ट ज़रूर झेलना पड़ा है और इसके लिए हम शर्मिंदा हैं । पर हमें राजनीति में तुम्हारा संग पाने के लिए इहे खेल खेलना पड़ा । एक से दू भला । अब हम दोनों जने मिलके राजनीति का गुल्ली डंडा खेलेंगें । हम तुम्हारे नेता-सरीखे दांव-पेंच को पहले ही भांप लिए थे । तब, हमने यह पक्का इरादा कर लिया कि हम तुमको अपना पार्टनर बनाके रहेंगे । इ सब जो हमारा तुम्हारे खिलाफ बखेड़ा लग रहा है, उससे तुम मकबूल हो गए है । अब, बड़ा मजा आयेगा । हम दोनों मिलके अपने गाँव का नाम रोशन करेंगें ।''

उन्होंने जैसे ही अपना हाथ बिरजू के कंधे से हटाया, उसने अपना सीना अकड़ाकर सीधा किया । वह कुछ क्षणों तक सोचते हुए उनके साथ चलता रहा । फिर, उसके माथे पर आए बल मिटने लगे । उसके मेहराए चेहरे पर धीरे-धीरे नूर आने लगा । वह एकदम से विहंसते हुए बकबका उठा,''हल्कू भैया हमें तुमको समझने में सचमुच बड़ी भूल हुई । हम तो बुझ रहे थे कि तुम सारे गाँववालों का अहित करने पर तुले हुए हो । हम भी कितने बुद्धू हैं कि हमको तुम्हारी राजनीति इतनी देर बाद समझ में आई?''

सत्यार्थीजी ने उसके मुँह से आ रही बदबूदार बास के चलते, रुमाल अपनी नाक पर रखा और उसकी गलबँहिया में फिर से खड़े हो गए ''आाख़िर, तुम हमारे छुटभइया हो ना ।

हमारी बिरादरी के, एक ही कुनबे के, एक ही गाँव के हाँ.... अंबेडकर गाँव की नाक हो तुम....।''

सत्यार्थीजी का एक-एक शब्द बिरजू पर जादू-मंतर की तरह प्रभाव डाल रहा था । वह बिरजू की पीठ ऐसे सहला रहे थे जैसे कि किसी रूठे बच्चे को लालीपाप देकर मनाने की कोशिश की जा रही हो ।

कुछ क्षण के बाद, सत्यार्थीजी ने लंबी राहत की साँस ली । नि:संदेह महावत ने बिगड़ैल हाथी पर काबू पा लिया था ।

सत्यार्थीजी ने अपना मुँह फिर बिरजू के कान से सटा दिया, ''अब बिरजू इहे टाइम है कि हम तुम्हारे साथ राजनीति का पहला खेल शुरू करें ... ।''

सपेरे की बीन से मंत्रमुग्ध हुए साँप की तरह बिरजू ने यंत्रवत सिर हिलाया ,''ठीक है , हल्कू भइया ! ''

वह उसी तरह फुसफुसाते रहे , गाँव पहुँच के, तुम सब जनों से यही बताना कि तुम्हारे जेल जाने से वापस आने तक जो कुछ भया है, ऊ हम दोनों की मिलीभगत से ही हुआ है । हाँ, एक ठो ज़रूरी बात ई है कि जब तुम हमारी गाड़ी में बैठोगे तो तुम बुध बाबा वाला गेरुआ लबादा पहिन लेना । हम भी पहिन लेंगे ताकि गाँववाले समझ जाएँ कि हम सुच्चे बौद्ध बन गए हैं....।''

उन्होंने चलते-चलते जेल की गेट से बाहर कदम रखा । लेकिन, बिरजू तो भौंचक रह गया । वह जो कुछ वहाँ देख-सुन रहा था, उसे वह सब हैरतअंगेज़ लग रहा था । अंबेडकर गाँव के लगभग सौ सवा सौ लोग उसकी आवभगत के लिए खड़े बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहे थे । जैसे ही उसने सिर उठाया, भीड़ बेतहाशा हुँकारने लगी, ''सत्यार्थीजी की जय ,बिरजू भइया की जय.....।''

सत्यार्थीजी ने अपने दोनों हाथ भीड़ की ओर उठाए , ''हमारे प्यारे भाइयों ! आज से बिरजू भइया, चौधरी ब्रजभूषण के नाम से जाने जाएँगे । ''

भीड़ फिर, नारेबाज़ी करने लगी, ''चौधरी ब्रजभूषण की जय! दलितों के मसीहा, चौधरी साब की जय! ''

हर्षोत्तेजना के उन क्षणों में एक महत्वपूर्ण घटना घटी कि बिरजू ने अपना सिर झुकाकर सत्यार्थीजी के पैर छुए । सत्यार्थीजी उसके इस आचरण पर सोचने लगे, जो आदमी एक बार झुक गया, वह उनसे दो-बारा आँख मिलाने की जुर्रत नहीं कर सकता । उन्होंने अपने दोनों हाथ उसके सिर पर रखकर आशीर्वाद दिया, ''सियासतदारी में अव्वल बने रहो!'' फिर वह उसे अपने सीने से आलिंगनबद्ध करते हुए अपनी मोटरकार में साथ-साथ सवार हुए । जब मोटरकार हौले-हौले आगे चल रही थी तो भीड़ भी जयघोष करते हुए सभी को यह संदेश दे रही थी कि उसकी राजनीति जागरुकता पूरे समाज का कायापलट कर देगी ।

नौलक्खा जेल से अंबेडकर गाँव का करीब तीन किलोमीटर का रास्ता बिरजू ने सत्यार्थीजी के साथ उनकी मोटरकार में तय किया जबकि ज़्यादातर गाँववाले पैदल ही और कुछ साइकिल से चलते हुए उनके पीछे-पीछे ठीक अंबेडकर पार्क के सामने आकर जमा होने लगे । जो लोग सत्यार्थीजी और बिरजू के साथ आए थे, उन्हें यह देख अत्यंत कौतूहल हो रहा था कि जेल के गेट के पास गाड़ी में तो दोनों साधारण कमीज़ और पैंट में सवार हुए थे जबकि अंबेडकर पार्क के पास गाड़ी से उतरने के बाद उनका हुलिया ही एकदम कैसे बदल गया । यानी, सत्यार्थीजी और ब्रजभूषण चौधरी सिर मुड़ाए हुए गेरुए लबादे में खड़े थे जैसे कि खुद गौतम बुद्ध अपने प्रिय शिष्य आनन्द के साथ पधारे हों ।

> ''हम तुमको जेल भेजने का जो चाल चले थे, उससे तुम्हारा कद ऊँचा हो गया है । तुम्हारी नेता बनने की ख्वाहिश सचमुच पूरी हो गई है । हाँ, तुमको कुछ कष्ट ज़रूर झेलना पड़ा है और इसके लिए हम शर्मिंदा हैं । पर हमें राजनीति में तुम्हारा संग पाने के लिए इहे खेल खेलना पड़ा ।''

गाँव के बुजुर्ग लखई बाबा, लल्लन ताऊ और भिक्खू चच्चा, बिरजू की अगवानी करते हुए एकदम बावले होकर सत्यार्थीजी की ओर बढ़े, उनकी पीठ थपथपाने के लिए । सत्यार्थीजी ने करबद्ध होकर बड़े सम्मान से दोनों के पैर छुए । लल्लन ताऊ तो उस बदले हुए माहौल को देखकर खुशी से फुलझड़ी हो रहे थे । उन्होंने तत्काल आगे बढ़कर बिरजू को गले लगाया, ''तो तुम इ जेलयात्रा करके सत्यार्थीजी के साथ रजनीति का सबक सीख रहे थे । हम तो बूझ रहे थे कि सत्यार्थी गाँववालों को डबलक्रास कर रहा है । हम जने डर रहे थे कि तुम्हें जेल से छुड़ाने के बहाने सत्यार्थी चंपत हो जाएगा । लेकिन, इसके पीछे हम गाँव के मुस्टंडे लौंडों को लगा दिए रहे कि जदि इ बिरजू को जेल से छुड़ाने के बजाए कहीं भागने-पराने की कोसिस करें तो इनका उहीं काम-तमाम करके ऊपर को पठा देना.....।''

लल्लन ताऊ की बात सुनकर सत्यार्थीजी अट्टहास करने लगे ।

बिरजू यानी ब्रजभूषण चौधरी का चेहरा अपने गाँव में इस भाईचारे को देखकर फूल की माफिक खिला हुआ था जैसे कि वह जेलखाने की तीन महीने की सज़ा न काटकर अपने किसी धन्ना-सेठ रिश्तेदार के यहाँ से आया हो जहाँ उसे बेनागा सुअर का गोश्त चाँभने को और रम की बोतल चढ़ाने को मिला हो । भिक्खू चच्चा उसे सिर से पैर तक बार-बार निहार रहे थे, ''अरे बिरजूआ! तू शच-शच बता कि तू सत्यार्थीजी के कौनो मेहमानखाने से आ रहा है या जेलखाने से। बड़ा बढ़िया तन्दुरुस्ती बनाके आया है .....।'' वह अपने हाथ से उसकी बाँहें टटोलकर उसकी तन्दुरुस्ती का जायज़ा लेने लगे ।

गाँववालों को यह कहाँ उम्मीद थी कि जिस बिरजू को सात साल का सश्रम कारावास मिला था, वह किस करिश्मा के चलते तीन

महीने के भीतर ही रिहा हो जाएगा ? वे तो उसकी एक झलक पाने के लिए इस तरह धक्कम-पेल करते हुए उमड़ पड़े थे जैसे कि किसी दूसरे ग्रह का कोई अजूबा प्राणी वहाँ भटककर आ गया हो ।

जब बिरजू उनकी बात पर घिघिया - घिघियाकर अपनी खुशी का इज़हार कर रहा था कि तभी सत्यार्थीजी अनुरोधपूर्वक बोल उठे, ''भिक्खू चच्चा! अब तुम बिरजू को इज़्ज़त दो । इसे ब्रजभूषण चौधरी कहके गुहराओ क्योंकि इ अब बड़े राजनेता बनने जा रहे हैं । कल देखना, जिलाभर के अख़बारों में ब्रजभूषण चौधरी का फोटू छपा होगा और इ ख़बर भी होगा कि जन-जन के मसीहा ब्रजभूषण चौधरी जेल से रिहा होकर सीधे समजा-सेवा में लग गए हैं.....।''

सत्यार्थीजी की बातें सुनकर वहाँ उपस्थित सभी बुज़ुर्गों का सीना गर्व से चौड़ा हुआ जा रहा था । तभी, भिक्खू ने हाथ जोड़कर, खुशी के मारे हिहियाते हुए सचमुच अपने भगवान यानी सत्यार्थीजी को प्रणाम किया , ''तुम्हारी किरपा इ गाँव पर बनी रही तो सारे लल्लू-पंजू के भी फोटू भी छपेंगे । तुमही इ गाँव के अंबेडकर हो । हम जने तो अब बूझ पाए हैं कि तुम भगवान के औतार हो, हमारे अंबेडकर भगवान हो । तुम जो कुछ भी करोगे , उससे हमारे गाँव का उद्धार होगा....।''

सत्यार्थीजी ने उनके हाथ पकड़कर नीचे करते हुए उनके कंधे को थपथपाया, ''आपको याद होगा कि जब हमारी मर्सिडीज़ गाड़ी ब्रेक फेल होने की वज़ह से अंबडकर बाबा की मूरती से टकराई थी तब आप जने इ समझा लिए थे कि हम बाबा साहेब के विरोधी हो गए हैं और इ कुकर्म जानबूझ के लिए हैं और आप जने हमें पंचायत में घसीट लाए थे । पर, हम भी आप जने की कृपा से अपना मनोबल नहीं टूटने दिए । हम जानते थे कि स्वर्ग में बैठे अंबेडकर बाबा हमें देख रहे हैं और ऊ हमारे साथ नाइंसाफ़ी नहीं होने देंगे । इ अंबेडकर भगवान की कृपा है कि हम इहाँ ज़िंदा आप जने की ख़िदमत करने के लिए हाज़िर हैं । उस दिन हम पंचायत में आप जने से एकठो

ब्राह्मण से बौद्ध बन चुके मिस्सिरजी दलितों के मसीहा थे । उनके ही पदचिन्हों पर चलते हुए सत्यार्थीजी आज भी दलितों के सामाजिक उत्थान के लिए कृतसंकल्प हैं .....''

वादा किए थे कि बिरजू प्रदेश की कमान सम्हालेगा औ हम केंद्र की । अब आप देखते जाइए कि इ दू -तीन बरिस में हम क्या करते हैं । हम कइसे पासा चलके औ गोट बइठा के ब्रजभूषण चौधरी को मुख्यमंत्री बनाते हैं ? ''

अंबेडकर बाबा की मूर्ति के सामने यह मज़मा लगा हुआ था, गाँव के हजारों लोग बात का बतंगड़ बनाते हुए बड़ी -बड़ी डींगे हाँक रहे थे और अपने जनप्रिय नेता सत्यार्थीजी के साथ-साथ ब्रजभूषण चौधरी का आवभगत करने में तल्लीन थे कि तभी सत्यार्थीजी की पत्नी सहजा पांडे सत्यार्थी ने आकर घोषणा की, ''अब आप लोग पार्क में चलिए, अंबेडकर बाबा की प्रतिमा स्थापित कर दी गई है और मिसिर जी की प्रतिमा को भी गेरुआ लबादा पहनाकर उनका बौद्धीकरण किया जा चुका है । अब हम अपने देश के सबसे बड़े राजनेता सत्यार्थीजी से अनुरोध करेंगे कि वे अपने कर-कमलों से बाबा साहेब की प्रतिमा का अनावरण करें .....।''

सत्यार्थीजी झटपट चलकर पार्क की गेट के सामने खड़े हो गए । उन्होंने बिरजू को इशारे से बुलाकर उसके दाएँ हाथ से उठाते हुए कहा, ''हमारे सगों से सगे गाँववालों! अंबेडकर भगवान की मूरती का अनावरण हम नहीं, हमारे प्रिय नेता ब्रजभूषण चौधरी करेंगे.....''

इस घोषणा से तो सत्यार्थीजी ने सभी का दिल जीत लिया । क्योंकि उन्होंने गाँव के एक ऐसे युवा को महत्व दिया था जो सभी का चहेता था । वे सचमुच तहे -दिल से उनका गुणगान कर रहे थे ।

पार्क में तालियों की कर्णभेदी गड़गड़ाहट के साथ ब्रजभूषण चौधरी ने अंबेडकर की प्रतिमा का अनावरण किया और सत्यार्थीजी की कुछ फुसफुसाहट सुनते हुए चिल्ला उठा , ''आज से सत्यार्थीजी को हम स्वामी सत्यार्थी जी कहकर गुहारेंगे ।''

उसके बाद गेरुआ लबादा पहने हुए प्रसन्नचित्त मुद्रा में सत्यार्थीजी मंच पर खड़े हुए , ''आज जिस तरह का कायाकल्प हमारे अंबेडकर गाँव का हुआ है ,भविष्य में ऐसा ही पूरे देश का होने वाला है । अपने जीवन के अंतिम दिनों में हिंदू से बौद्ध बन चुके मिसिर स्वामीजी का सौगंध खाकर कहता हूँ कि जब तक इस देश के चप्पे-चप्पे का अंबेडकरीकरण नहीं हो जाता, हम चैन से नही बैठेंगे । हमारे मिसिर स्वामीजी में अंबेडकर भगवन की आत्मा व्याप्त थी और अंबेडकर बाबा, भगवान बुद्ध के अवतार थे । उनकी प्रेरणा से ही दलित वर्ग के धनीराम मिसिरजी ने दलित समाज की जीवन - पर्यत सेवा करते हुए शहीद हुए थे और अपने जीवन के अंतिम दिनों में खुद बौद्ध बन गए थे । उन्होंने पूरे समाज को यह संदेश दिया था कि आज देश की भलाई इसी में है कि इसे अंबेडकर देश कहा जाए । हमारा यहाँ उपस्थित सभी मीडियाजनों से यह जोरदार अनुरोध है कि वे हमारी इस मांग को केंद्र सरकार के सामने तत्काल रखें .... ।''

बिरजू की वापसी के बाद अंबेडकर गाँव में दीवाली जमकर मनाई गई। बिरजू की बुढ़िया माई कलौतिया सारे लाज-शर्म छोड़कर घर-घर के सामने कमर मटकाते हुए नाचती फिर रही थी । छटाँक-छटाँक भर के बच्चे रात-दिन चुहुलबाजी करते हुए लगातार गाए जा रहे थे , ''सत्यार्थी राजा का लगा दरबार/ जहाँ पर बिरजू भए थानेदार ।'' बिरजू का

भी दिमाग सातवें आसमान पर था । वह अपने यार-दोस्तों के साथ सत्यार्थीजी की गद्दी में चौबीसों घंटे बैठकी लगाए हुए और शराब-कबाब उड़ाते हुए दिन के उजाले में इस हसीन ख़्वाब में खोया रहता था कि वह दिन दूर नहीं जबकि उसे वे सभी भोग-विलास के साधन सुलभ होंगे जो बम्हरौली, कायथाना और ठकुराना गाँव के बड़े लोगों के पास हैं ।

पर, सत्यार्थीजी सचमुच गाँव में आए इस बदलाव से किसी भी तरह से खुश नहीं थे । उनके जी में आ रहा था कि गाँव को आर.डी.एक्स. या डाइनामाइट से उड़ाकर इस तरह धूल-धूसरित कर दिया जाए कि आने वाले सैकड़ों सालों तक इस गाँव का नामोनिशान तक न मिल सके । उनके इस आक्रामक विचार का कारण सिर्फ़ ब्रजभूषण चौधरी था जिसे उन्हें अनजाने में ही सींचकर पौध से पेड़ बनाना पड़ा । बस, अपने गाँववालों की हमदर्दी बटोरने के लिए ही उन्होंने उसे सिर चढ़ाया ।

गाँव में ब्रजभूषण चौधरी का दबदबा बढ़ता जा रहा था जिसके चलते सत्यर्थीजी के दिन का चैन और रातों की नींद हराम थी । ब्रजभूषण तो उनकी परछाई बनकर अंबेडकर गाँव से राजधानी तक उनका साथ नहीं छोड़ता था जबकि उन्हें वह कतई नहीं भाता था । वह बड़े असमंजस में थे कि आख़िर, वह करें तो क्या करें ! अगर उसे दुरदुराते हैं तो अंबेडकर गाँववाले फिर उनके दुश्मन बन जाएंगे । और अगर उसे यूँ ही अपने आएँ-बाएँ रखते हैं तो वह उन्हें आस्तीन के साँप की तरह आतंकित करता रहेगा । चाहे सत्यार्थीजी विधान सभा अधिवेशन में व्यस्त हों या किसी मीटिंग या सभा में, जनता से मिलने-जुलने और उनकी समस्याएँ सुनने के लिए बिरजू कभी अंबेडकर गाँव में तो कभी राजधानी स्थित उनके आवास पर तैनात रहता था । उसे अपने इस कामकाज से बड़ा सुकून मिल रहा था क्यांकि उसकी सर्वत्र पूछ बढ़ती जा रही थी । सत्यार्थीजी सामने गद्दी में बैठे होते थे जबकि लोग बाग चौधरी ब्रजभूषण से मुख़ातिब रहते थे । इससे उनकी लोकप्रियता में मंदी का दौर शुरू हो गया था क्योंकि ज़्यादातर मुलाकाती यह सोचने लगे थे कि उनका काम तो ब्रजभूषण से ही बनना है ।

बेशक! इस बात पर सत्यार्थीजी का चिंतित होना ज़ायज़ था । एक रात, वह राजधानी स्थित अपनी सरकारी कोठी में मधु मिश्रा के साथ रज़ाई में दुबके हुएथे । वह इतने अन्यमनस्क थे कि लाख कोशिशों के बावजूद जब मधु उन्हें गरम नहीं कर पाई तो उसने अपनी पीठ फेर ली । बेशक, उनके खून में

छँटाक-छँटाक भर के बच्चे रात-दिन चुहुलबाजी करते हुए लगातार गाए जा रहे थे "सत्यार्थी राजा का लगा दरबार-जहाँ पर बिरजू भए थानेदार ।"

जैसे पहाड़ से आने वाला बर्फ़ीला ठंडा पानी घुल गया हो ।

"आज आपको क्या हो गया है, विधायक जी ?" उसकी खिसियाहट में भी प्यार का सुरूर था ।

"हमें भी ताज़्जुब हो रहा है कि हम ..... ।" वह हकलाकर रह गए ।

"हम जानते हैं कि आप आजकल बड़ी दुइधा में हैं ।" मधु ने उठकर सहानुभूति में उनके बाजू सहलाए ।

"हाँ, हमें बिरजू का थोबड़ा देखना ज़रा भी बरदाश्त नहीं हो रहा है । वो स्साला रात-दिन हमारी परछाँई बनके हमारे आगे - पीछे डोलता फिरता है ....।" उनके नथुने गुस्से में फड़फड़ाने लगे ।

"आप हुकुम करें तो उस हरामी के पिल्ले को जहन्नुम का रास्ता दिखा दें ... ।" रजाई ओढ़े-ओढ़े, मधु उनकी आँखों में झाँकने लगी ।

" लेकिन, उससे हमारी मुसीबत कम नहीं होगी । गाँववाले समझेंगे कि हमने ही उसे टपका दिया .....।" उनकी आँखों में बेचारगी का धुंध साफ नज़र आ रहा था ।

"तो गाँववालों का ही सफाया कर देते हैं । न रहेगा बाँस , न बजेगी बाँसुरी ।" मधु मिश्रा की आँखों में शोखी खून बनकर उतरने लगी ।

उसकी बात सुनकर सत्यार्थीजी लातों से रजाई को फेंक, एकदम से उठ बैठे । उन्होंने झट सिगरेट सुलगाई और बार-बार कश लेते हुए आँखें गोल-गोल नचाने लगे ।

"इ कइसे हो सकेगा, मधुबाला ?" सत्यार्थीजी उत्तेजना में उसकी तुलना मशहूर फिल्म तारिका मधुबाला से करते हुए उसे मधुबाला ही पुकराते थे ।

"भैंरो भाई को सुपारी दे दीजिए । वो आर.डी.एक्स. से समूचे गाँव को राख में तब्दील कर देगा । लोग पचासों साल तक अंबेडकर गाँव का नामोनिशान तक नही ढूँढ पाएँगे ।" मधु ने जितनी सहजता से यह बात कही, सत्यार्थीजी को यह बात उतनी ही असहज लगी ।

"तुम भी ना, औरतों जैसी बुड़भकई की बात करने लगती हो । तुम्हारी बात का न सिर है, न पैर ।"

"विधायकजी, अब यही एक चारा है कि अंबेडकर गाँव का ही सफाया कर दीजिए ।"

"लेकिन....।"

"लेकिन-वेकिन कुछ भी नही । हम मीडियावालों को यकीन दिला देंगे कि यह काम नक्सलियों ने किया है, बाक़ायदा विदेशी ताकत की मदद से । फिर, आप अंबेडकर गाँव के ख़ात्मे पर मीडिया में और टेलीविज़न पर घड़ों आँसू बहाकर जनता की हमदर्दी भी खूब बटोर लीजिएगा । इस काम में तो आप जन्मजात माहिर हैं ।"

सत्यार्थीजी पल भर के लिए उसकी तारीफ़ पर कुटिल मुस्कान को सिगरेट के धुएँ में उड़ाते हुए अचानक उठ खड़े हुए ।

"अरे, ऊ गाँव में सात हजार लोग रहते हैं ।" उनके मन के किसी कोने में गाँववालों के प्रति मोह का वायरस अभी भी ज़िंदा था ।

"लेकिन, ई सात हजार लोग आपकी किस्मत पर ग्रहण लगाए बैठे हैं । हमें भी सुकून मिलेगा कि इसी तरह हमारी सौत सहजा पांडे का भी वारा-न्यारा हो गया .....।"

सत्यार्थीजी की आँखें फिर गोल-गोल नाचने लगीं, ठीक जैसे बाघ अपने शिकर को देख अपनी आँखें गोल-गोल नचाने लगता है ।

मधु मिश्रा ने कोई हड़बड़ी दिखाए बिना, एक नंबर मिलाते हुए टेलीफोन का चोंगा सत्यार्थीजी के मुँह से सटा दिया, ''लीजिए भैंरोभाई को सुपारी दे दीजिए ।''

सत्यार्थीजी ने मधु की आँखों में झाँककर देखा तो उन्हें घोर आश्चर्य हुआ कि एक औरत की आँखों में जो हैवानियत तिर रही है, वह उन जैसे मर्द की आँखों में क्यों नहीं तिरती । उन्होंने पलभर के लिए चोंगा अपने मुँह से हटाया जिसे मधु ने ज़बरन उनके मुँह से सटा दिया ।

सुबह से ही सत्यार्थीजी अपने राजधानी स्थित बंगले में बड़ी ऊहापोह की स्थिति में इधर-उधर टहल रहे थे । मधु मिश्रा बार-बार भैंरो भाई का नंबर मिलाकर बात करने की कोशिश कर रही थी जबकि उसके मोबाइल पर रिंग तो जा रही थी लेकिन उधर से कोई उत्तर नहीं मिल पा रहा था ।

सत्यार्थीजी एक बैक बड़बड़ाने लगे , ''इ स्साले भैंरो को क्या हो गया है ? कल रात तक तो उससे खूब बतकही हो रही थी बता रहा था कि अंबेडकर गाँव के कोने - कोने में सैकड़ों डाइनामाइट बिछा दिया गया है । बस! जैसे ही सुबेरे का पाँच बजेगा रिमोट कंट्रोल से गाँव को उड़ा दिया जाएगा । लेकिन, हमको लगता है कि कुछ गड़बड़ हो गया है । आठ बजने को आया, लेकिन न तो उसका कोई ख़बर आया, न टी.वी. से कोई रपट आई कि .... ।''

तभी मधु मिश्रा ने टी.वी. चालू कर दिया और एक समाचार चैनल लगा दिया । सत्यार्थी जी बड़े ताज़्जुब में थे कि देश-दुनिया की ख़बर दी जा रही थी लेकिन अंबेडकर गाँव के उड़ाए जाने की ख़बर नदारद थी । वह एकदम से खिसिया उठे , ''मधुबाला ! बंद करो इस बुद्धू बक्से की नौटंकी । अब हमें लगता है कि अंबेडकर गाँव की भभूत हम अपने माथे पर नहीं लगा पाएंगे .....।''

उन्होंने अपनी बात ख़त्म भी नहीं की थी कि उनके कान खड़े हो गए । कोई ख़ास रपट जर्नलिस्ट चौरसिया देने जा रहे थे , ''अब सुनिए एक ख़ास ख़बर अंबेडकर गाँव को डाइनामाइट से उड़ाने की साज़िश नाकाम कर दी गई । ख़ुफिया रिपोर्ट बताती है कि गत रात कुछ आतंकवादी गाँव में घुसकर सैकड़ों डाइनामाइट बिछाते हुए पकड़े गए । लेकिन, एक भी आतंकवादी, पुलिस के हाथ नहीं लग सका । जिस समय पुलिस आतंकवादियों की धर-पकड़ में लगी हुई थी, उस समय पत्रकारों की टीम ने एक स्थानीय समाजसेवी भैंरो ठाकुर से संपर्क किया । उन्होंने बताया कि कुछ नेता गाँव में हो रहे रिकार्ड तोड़ विकास से जले-भुने थे । इसलिए,वे इसे देश के नक्शे से ही नेस्तनाबूद करने की साज़िश चल रहे थे । उन्होंने बताया कि सामाजिक विकास में उक्त गाँव ने राष्ट्रीय मानदंडों को भी पछाड़ दिया है । इस ख़बर से क्षेत्रीय विधायक अत्यंत खिन्न हैं । मैं विधायक श्री सत्यार्थी स्वामीजी से इस घटना पर टिप्पणी चाहूँगा । हैलो स्वामीजी, हैलो, हैलो..... सत्यार्थीजी का टेलीफोन अचानक खनखना उठा । मधु मिश्रा ने उनके कान में कुछ फ़ुसफ़ुसाकर कहा और टेलीफोन का चोंगा उनके कान से सटा दिया ।''

''हैलो ,स्वामीजी! आप तक हमारी बात पहुँच पा रही है कि नहीं ।''

सत्यार्थीजी तत्काल भावुक होकर बिलखने लगे , ''हाँ चौरसिया जी ! मैं आपकी बात सुन रहा हूँ । मुझे इस साज़िश के बारे में सुनकर हार्दिक आघात पहुँचा है । मैंने अंबेडकर गाँव के हर व्यक्ति को अपने बच्चों कीतरह पाला- पोसा है । उन्हें अपने खून से सींचा है। मुझे यह सोचकर बेहद दुःख हो रहा है कि आख़िर ! देश के सुरक्षातंत्र को क्या हो गया है । आंतकवादियों की पैठ देश के छोटे-छोटे गाँवों तक हो गई है? क्या आज सारा देश बारूद पर सो रहा है ? मैं देश के निकम्मे और मतलबी नेताओं को धिक्कारता हूँ और केंद्रीय सरकार से पुरजोर अनुरोध करता हूँ कि वह इस घटना की नैतिक ज़िम्मेदारी लेते हुए तत्काल त्यागपत्र दे दे .... ।''

बोलते - बोलते सत्यार्थीजी का गला बिल्कुल रुँध गया ।

चौरसियाजी बीच में ही बोल उठे, ''अच्छा-अच्छा, स्वामीजी ! सारा देश जानता है कि आप अंबेडकर गाँव के लिए क्या हैं !''

फिर, सत्यार्थीजी से संपर्क काटते हुए चौरसियाजी ने रपट जारी रखी , ''अंबेडकर गाँव कुछ वर्षो से सुर्खियों में रहा है जहाँ धनीराम मिसिर जैसे महान समाजसेवी ने दलितों के उत्थान में उल्लेखनीय भूमिका निभाई थी लेकिन सियासी षडयंत्रों के तहत उन्हें अपनी जान गँवानी पड़ी । ब्राह्मण से बौद्ध बन चुके मिसिरजी दलितों के मसीहा थे । उनके ही पदचिन्हों पर चलते हुए सत्यार्थीजी आज भी दलितों के सामाजिक उत्थान के लिए कृतसंकल्प हैं .....।''

शाम को दूरदर्शन पर आयोजित एक इंटरव्यू में सत्यार्थीजी, भैंरो ठाकुर और वरिष्ठ पत्रकारों के बीच राष्ट्रीय हित के मुद्दों पर गंभीर बातचीत हुई । सत्यार्थीजी ने साफ़ शब्दों में कहा, ''मुझे ज़ेड लेविल की सुरक्षा मुहैया कराई जाए क्योंकि जिन राष्ट्रद्रोहियों की कुदृष्टि अंबेडकर गाँव पर है, वे गाँव के विकास के सूत्रधार उनकी यानी सत्यार्थी स्वामीजी की जान कभी नहीं बख़्शेंगे । ''

अगले दिन के सभी अखबार ब्रजभूषण चौधरी के सचित्र साक्षात्कार से अटे पड़े हुए थे । कहीं-कहीं पिछले पन्नों पर सत्यार्थीजी के घड़ियाली आँसुओं की चर्चा की गई थी। हाँ, भैंरो (ठाकुर) की इस ख़्वाहिश को बारंबार रेखांकित किया गया था कि जब वे अपने क्षेत्र से विधायक की कुर्सी हासिल करेंगे तो उनकी बदौलत एक सामाजिक क्रांति का सूत्रपात होगा ।

बहरहाल, सत्यार्थीजी मधु मिश्रा के साथ रज़ाई में लेटे-लेटे अख़बारों के पन्ने पलटते हुए उनके संपादकों को टेलीफोन पर फ़टकार लगाने के लिए गला फाड़ -फाड़कर चिल्ल-पों मचा रहे थे जबकि मधु मिश्रा एक हाथ में पानी का गिलास लिए हुए उनके होठों से लगाकर उनका गला सींच रही थी और इतनी ठंड में उनके माथे पर आ रहे पसीने को रुमाल से लगातार पोंछती जा रही थी ।

कहानी

उसका पत्र

भावना सक्सेना (सूरीनाम)

''शब्दों से खेलना मुझे नहीं आता, न ही ऐसी महारथ हासिल की है कि अपने भाव छिपा सकूँ । शायद यह कमी है मुझ में, बनावटी हँसी नहीं हँस सकती और ना ही बनावटी आँसू गिरा सकती हूँ । हाँ आँसू गिरते बहुत जल्दी हैं, बहुत बार यह जानते हुए भी कि जिस कारण भर आये हैं वे, उसका कोई महत्व ही नहीं है । दरअसल वह आँसू किसी के लिये नहीं अपने लिये ही होते हैं । कभी बेबसी पर कभी बेचारगी पर...कमज़ोर तो नहीं हूँ, भावुक हूँ और धीरे-धीरे समझ रही हूँ कि आज के युग में भावुक होना एकदम बेवकूफी है ... लेकिन सब जानते हुए भी अपनी मिट्टी को बदलना तो मेरे हाथ में नहीं । किसी और की गढ़ी हूँ न, और शायद उसी की इच्छा से यूँ बनती बिगड़ती टूटती रहती हूँ..... हाँ हर रिश्ता तोड़ जाता है मुझे, क्योंकि यह जानते हुए भी कि कोई रिश्ता, कोई संबंध शाश्वत नहीं होता, हर रिश्ते को टूट कर निभाया है। पर रिश्ते होते ही ऐसे हैं उम्र के छोटे...हर रिश्ता अपनी उम्र लिए..छोटी सी! मधुर मिठास लिए, जो धारे-धीरे रीतती जाती है और घट जब खाली हो जाता है, सूख जाता है और नमी की आखिरी बूँद समाप्त होते ही चटक जाता है, फूट जाता है''।

''आप बहुत अच्छी हैं, नेक इंसान हैं, मुझसे बड़ी भी हैं, हमारा रिश्ता एक अच्छे सुर से शुरू हुआ था पर मधुर संगीत बनने से पहले तनन इतना हुआ कि शोर बन गया, शायद रिश्ते की कमी थी, शायद हमारी थी! खैर अंत तो यही है कि कमज़ोर था, तनाव नहीं झेल सका, टूट गया। आपके ही शब्द कि ''हम इस रिश्ते को किसी से प्रभावित नहीं होने देंगे'' । मुझे कई बार एक अंधेरे कोने में सुबकते दिखे हैं, अपने कहे का मान भी न रखा आपने। शिकायत नहीं कर रही हूँ, वास्तविकता बयान कर रही हूँ, उलझन में थी, सोचा था नदी की तरह बह जाने दूँ आपको और खुद भी निशब्द बहती रहूँ....समानान्तर! हाँ हम समानान्तर ही बह सकते है, कभी मिल नहीं सकते, जिस क्षेत्र में हैं शायद उसकी वजह से, या कहूँ हम हैं ही नदी के दो पाट- समानान्तर!!! समान भी पर अंतर लिए हुए और इन पाटों के बीच से बहुत सा समय बह गया है, और जो बह गया उसे वापस नहीं लाया जा सकता, संभव होता तो पिछले कुछ महीने अपने इस रिश्ते से कम कर देती। कुछ अच्छे पल जिये हैं हमने बस वही स्मृति पटल पर अंकित रहने देना चाहती हूँ। आप भी वही करें, बाकी सब धूमिल हो जाने दें''।

''बहुत बार मन में आया था आपसे बहुत कुछ कहने को, आपको अपने दर्द में भागीदार बनाना चाहा था, बस समय नहीं मिला, अच्छा हुआ! और समय की यह कमी वरदान साबित हुई, जहां आप हैं उस परिवेश में आप किसी का

भावना सक्सेना

भावना सक्सेना दिल्ली विश्वविद्यालय से अँग्रेजी और हिंदी में स्नातकोत्तर हैं और अनुवाद प्रशिक्षण में स्वर्ण पदक प्राप्त किया है। भारत सरकार के गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग में कार्यरत भावना सक्सैना आजकल विदेश मंत्रालय द्वारा सूरीनाम स्थित भारत के राजदूतावास में अताशे (हिंदी व संस्कृति) पद पर प्रतिनियुक्त हैं और वहाँ हिंदी प्रचार प्रसार के लिए कार्य कर रही हैं। आपके प्रोत्साहन से सूरीनाम के हिंदी लेखकों में नव-ऊर्जा का संचार हुआ है। आपने सूरीनाम साहित्य मित्र संस्था द्वारा प्रकाशित प्रथम कविता संग्रह 'एक बाग के फूल ' और कवि श्री देवानंद शिवराज के कविता संग्रह ''अभिलाषा'' का संपादन किया और प्रवासी भारतीय साहित्य पर कार्य कर रही हैं। समय समय पर कई लेख, कविता व कहानी कई पत्र-पत्रिकाओं में छप चुके हैं।

Bhawna Saxena
Attache
(ITEC, Hindi & Culture, PS to Ambassador)
Embassy of India
Dr. Sophie Redmondstraat No. wwv
Paramaribo
Suriname .
Ph. +597 493265
bhawnavsaxena@gmail.com

बाल्यावस्था में शरारती बालकों के साथ मिलकर पिछली गली में रह रहे कुम्हारों के ताज़े बने घड़ों पर छोटी छोटी गोटियाँ फेंक कर जाने कितने घड़े फोड़ा करते थे आज उसकी पुनरावृत्ति हो गयी। .....इतना वज़न था उस कागज़ के पुर्जे में कि उसे लिए खड़ी न रह सकी।

भी दर्द समझ पाएँ, यह आज आपसे आशा भी नहीं रखती । यह सोच कर खुश हूँ कि जो भीतर रह गया कम से कम हास्य व्यंग्य का विषय तो नहीं बना, सिहर जाती हूँ यह सोच कर कि यदि कहीं आप मेरे अंतर के घाव देख जातीं तो किस तरह कुरेद-कुरेद कर बहते रक्त की नुमाइश लगा देतीं। अब समझ गयी हूँ कि अपने घावों को लपेट कर छुपाए रखना ही श्रेयस्कर है, दुनिया उन पर मरहम नहीं लगाती, उन्हें कुरेदती है तब तक जब की सारा लहू बह कर आपको गतिहीन न कर दे''।

''नहीं जानती फिर कभी मिलेंगे या नहीं, मेरी इन बातों का आप पर कोई असर होगा या नहीं पर कहना ज़रूरी था, आज अपने लिए.....दिल का भार कुछ हल्का होगा और मैं फिर खड़ी हो सकूँगी शायद फिर टूटने के लिए। यह सब मैं बोल नहीं पाती, बोलने का प्रयास करती हूँ तो आँसुओं में बह जाती हूँ, इसलिए लिख रही हूँ - इस संबंध का घट रीत चुका है, दरक भी गया है, उसमें फिर स्नेह सिंचित करना संभव न होगा, बहुत सोच कर आखिरी दिन आपको निमंत्रित किया था, आप नहीं आईं कारण जानने कि अब कोई इच्छा भी नहीं है''।

फिर भी हृदय से शुभकामना करती हूँ जहाँ रहें सुखी रहें, और हो सके तो सरल रहें .....प्रेम सहित नहीं कहूँगी, आदर भी महसूस नहीं कर रही पर एक जुड़ाव है, जिसे ख़त्म भी नहीं कर पा रही हूँ उसी के रहते सोचती हूँ कि कहीं मिल गईं तो नज़रें नहीं चुराएँगी..... तरु ।

अवाक थी मैं, कागज़ के उस पुर्जे को पढ़कर, तरु! तरुवर सी विशाल, सरल, सहज और मैं! समझते हुए भी जिसे अनदेखा करती रही थी वही शब्दो में पिरो कर मेरे सामने सजा गयी थी। पहली बार कुछ अफसोस हुआ महत्वाकांक्षाओं पर, महत्वाकांक्षा भावहीन बना दें यह आवश्यक तो नहीं पर संतुलन बना पाना बड़ा कठिन है। ग्लानि! लेकिन ग्लानि से भी ज़्यादा रोना आया अपनी बेचारगी पर, अपने ही शब्द वे ढेले लगे जिनसे घट फूट गया था। बाल्यावस्था में शरारती बालकों के साथ मिलकर पिछली गली में रह रहे कुम्हारों के ताज़े बने घड़ों पर छोटी छोटी गोटियाँ फेंक कर जाने कितने घड़े फोड़ा करते थे आज उसकी पुनरावृत्ति हो गयी। .....इतना वज़न था उस कागज़ के पुर्जे में कि उसे लिए खड़ी न रह सकी। धम्म से गिरी सोफ़े पर और आँख मूँदते ही पिछले दो वर्ष चलचित्र की भांति तैरने लगे मस्तिष्क पर, पहली मुलाक़ात!!! मैं नई डरी -डरी सी और मुझे आत्मविश्वास से भरते उसके शब्द, छोटी बहन सा छलकता नेह.....नई जगह में तो सहानुभूति के दो बोल ही बहुत होते हैं वह तो संबल बन गयी मेरा।

मैं अकेली ही गयी थी उस नौकरी के लिए.....जाना पड़ा।

सुधीर बड़ी आसानी से कह गए थे, ''हम पच्चीस वर्ष से साथ हैं, दो वर्ष अलग भी रहे तो क्या? सुकन्या का घर बसाना है, विक्रम के कॉलेज की फीस देनी होगी कल, जानती हो न वह मेडिकल में दाखिला चाहता है, फिर पैसा तो कभी पूरा नहीं होता।''.. हाँ एकदम यही बात मैं कहना चाहती थी - पैसा कभी पूरा नहीं होता, न इंसान की चाहतें कम होती हैं, फिर क्यों अंधी दौड़ में हम खुद को भस्म कर दें, भावनाओं को बलि कर दें।

मेरे लिए रिश्ते बहुत अहमियत रखते थे पर जबसे सबसे करीबी रिश्ते मुझे छल गए, मुझे दुधारू गाय के रूप में देखने लगे । मैंने रिश्तों पर गौर करना छोड़ दिया, तुम एक नई खुशबू एक ताज़े झौंके की तरह जिंदगी में आयीं पर देखो जब सब द्वार बंद कर दिये गए हों तो हवा का झौंका भी प्रवेश नहीं करता।

एहसासों को कुचलकर क्यों ऐसा करती रही उसका ब्योरा देकर तुम्हारी दया का पात्र नहीं बनना चाहती.....वह स्त्री कभी घर से बाहर जो अकेली न रही हो उसका सात समंदर पार चले आना कोई छोटी बात नहीं। कहा जाता है कि जीवन की बड़ी- बड़ी बातें भी गौण हो जाती हैं, मजबूरियों के आगे, दो बुरे से एक चुनना जब अपरिहार्य हो तो कम वाले को अपना ही लिया जाता है, इस डर से कि आगे ....शायद तुम समझ लोगी कि एक स्त्री जिसे शक्ति रूपा कहा जाता है दरअसल आज के युग में भी उसका अपना कुछ नहीं, अपनी जिंदगी के निर्णय भी नहीं ।

.....फिर यहाँ आकर जिन विरोधी ताकतों का सामना करना पड़ा मैं टूट गई और काँच जब भी टूटता है उसका दूसरों को चुभना स्वाभाविक है, लहूलुहान होते देखती रही तुम्हें, बार-बार, लगातार। वो रिश्ता नहीं तरु, मैं कमज़ोर थी, टूटी हुई थी, समय किस तरह हमें बदलता है और परिस्थितियाँ किस तरह हमारा व्यवहार नियंत्रित करती है इस का विश्लेषण करने की ताकत नहीं है, इसे जिया है मैंने! तुम्हारी गुनहगार हूँ..... तुमने कहा ''फिर कहीं मिल गईं तो नज़रें नहीं चुराएँगी'', तरु मैं ईश्वर से प्रार्थना करूँगी हम कभी न मिले.....मुझमे हिम्मत नहीं है तुम्हारा सामना करने की। मैं ईश्वर से प्रार्थना करूंगी कि वह तुम्हें शक्ति दे और तुम सदा यूं ही बनी रहो, सहज, सरल....।

दृष्टिकोण

संकल्प का बल

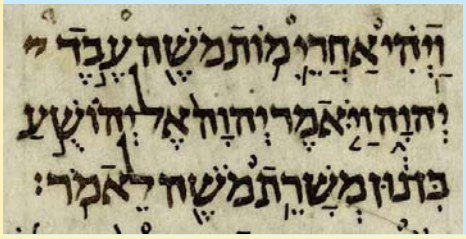

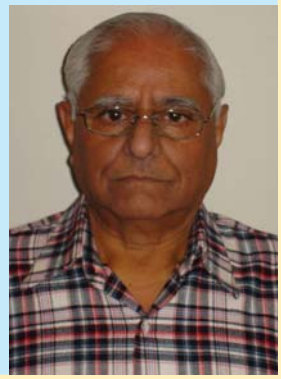

डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री (आस्ट्रेलिया)

इज़रायल देश से आप परिचित ही हैं, जो द्वितीय विश्व युद्ध के बाद 1948 में विश्व भर में फैले यहूदियों को एक स्थान पर बसाने के लिए बनाया गया । आज वहाँ की मुख्य राजभाषा हिब्रू है और सहयोगी भाषाएँ अंग्रेज़ी एवं अरबी हैं । अंग्रेज़ी और अरबी तो आज विश्व के अनेक देशों में बोली जाती हैं, पर हिब्रू ऐसी भाषा है जो दुनिया के नक़्शे से लगभग गायब ही हो गई थी । इसके बावजूद यदि आज वह जीवित है और एक देश की राजभाषा के प्रतिष्ठित पद पर आसीन है, तो इसके पीछे एक व्यक्ति का, केवल एक व्यक्ति का, विश्वास कीजिये केवल एक व्यक्ति का संकल्प है, संघर्ष है, जूनून है, स्वाभिमान के साथ जीने की अदम्य इच्छाशक्ति है । जानना चाहेंगे कि वह एक व्यक्ति कौन था, हिब्रू कैसे नष्ट हुई और उसने उसे पुनर्जीवित कैसे किया ?

जब विश्व की प्राचीनतम भाषाओं की चर्चा होती है तो सबसे पहला नाम तो ''संस्कृत'' का लिया जाता है क्योंकि संस्कृत में लिखा ''ऋग्वेद'' विश्व साहित्य में अब तक उपलब्ध प्राचीनतम ग्रन्थ है, पर विश्व के अन्य भागों में जो भाषाएँ विकसित हुईं, उनमें एक प्राचीन भाषा है हिब्रू । यह शब्द मूलतः मिस्र की भाषा के ''एपिरू'' शब्द से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है - मिस्री समाज के कुछ ऐसे वर्ग जो ख़ास तरह के काम करते थे; पर कालान्तर में यह शब्द उस भाषा के लिए रूढ़ हो गया जिसे अरब वाले ''इब्रानी'' कहते थे । इस भाषा की कतिपय विशेषताएँ आरमाइक और अरबी भाषा से मिलती-जुलती हैं ।

यों तो हिब्रू भाषा के लिखित रूप का सबसे प्राचीन उदाहरण अब से लगभग तीन हज़ार वर्ष पूर्व का इज़रायल में मिलता है जो सम्राट डेविड और उसके बेटे सोलोमन के समय का बताया जाता है , पर प्राचीन हिब्रू में लिखी हुई सबसे प्रसिद्ध रचना बाइबिल में है । ''बाइबिल'' शब्द का मूल अर्थ यद्यपि ''पुस्तक'' है, पर पाठक जानते ही हैं कि अब इस शब्द का प्रयोग यहूदियों और ईसाइयों के उस पवित्र ग्रन्थ के लिए होता है जो स्वयं अनेक पुस्तकों का संग्रह है । यह तो निश्चित है कि इन पुस्तकों की रचना अलग-अलग समय पर और अलग-अलग लोगों ने की, पर वह कब हुई, और जो बाइबिल आज हमारे सामने है उसमें उन्हें कब संकलित किया गया, इस सम्बन्ध में विद्वान एकमत नहीं हैं । यही कारण है कि बाइबिल के विभिन्न संस्करणों में संकलित पुस्तकों की संख्या 66 से लेकर 81 तक है । बाइबिल से संबंधित सात ऐसी पुस्तकें भी हैं जो पहले बाइबिल में संकलित की जाती थीं, पर बाद में जिन्हें ईसाई पंथ को मानने वाले विद्वानों ने स्वयं अप्रामाणिक (The Apocrypha) मानकर खारिज कर दिया है । हाँ, यह ऐतिहासिक तथ्य है कि 17 वीं शताब्दी के शुरू में (1607 से 1611) इंग्लैण्ड में किंग जेम्स ने बाइबिल का जो अनुवाद अंग्रेजी में 47 अनुवादकों से कराया और बाद में उसमें कुछ संशोधन कराकर जो संस्करण ऑक्सफोर्ड ने 1769 में प्रकाशित किया, आज उसे ही लगभग पूरे विश्व में अंग्रेजी का प्रामाणिक संस्करण माना जाता है । इस बाइबिल के सामान्यतया दो भाग किए जाते हैं - ओल्ड टेस्टामेंट और न्यू टेस्टामेंट । ओल्ड टेस्टामेंट में 39 और न्यू टेस्टामेंट में 27 अर्थात कुल 66 पुस्तकें हैं ।

भाषा की दृष्टि से देखें तो ओल्ड टेस्टामेंट की प्रारम्भिक पाँच पुस्तकें हिब्रू में लिखी हुई थीं जिन्हें पेंटा-ट्यूक (Pen - ta - teuch) अथवा तोरा (Torah) कहा जाता है । ओल्ड टेस्टामेंट की शेष पुस्तकें लैटिन में और न्यू टेस्टामेंट की सभी पुस्तकें ग्रीक में लिखी हुई थीं । पेंटा ट्यूक के बारे में ऐसा माना जाता है कि ईसा से लगभग पाँच शताब्दी पूर्व इन्हें बाइबिल में शामिल किया गया जबकि इनकी रचना काफी पहले , लगभग नौ शताब्दी ईसा पूर्व हो गई थी ।

इस प्रकार हिब्रू भाषा बाइबिल में तो सुरक्षित हो गई, पर बाद में कई कारणों से वह सामाजिक जीवन से गायब होती चली गई । इनमें सबसे प्रमुख कारण था राजनीतिक । उस समय फारस (वर्तमान ईरान) साम्राज्य का विस्तार होता जा रहा था । ईसा पूर्व छठी शताब्दी में तो ईरानी आर्य सम्राट क्रूश (साइरस) का शासन मध्य एशिया से लेकर भूमध्य सागर तक फैल चुका था । (''आर्य सम्राट'' शब्द से चौंके नहीं । ईरान भी अतीत में वेद, वैदिक साहित्य और वैदिक परम्पराओं से अनुप्राणित रहा है और ईरान के शासक ''आर्य सम्राट'' ही कहलाते थे । बाद में, जब ईरान में इस्लाम मज़हब फैल गया तब भी शासकों की यह उपाधि बरकरार रही । हाँ, अब लगभग तीस वर्ष पूर्व हुई ''इस्लामी क्रान्ति'' के बाद यह परम्परा समाप्त

हो गई है) हम बात कर रहे थे ईरानी साम्राज्य की । क्रूश के पुत्र कम्बीसस, और उसके बाद दारा (डेरियस) ने साम्राज्य का विस्तार करके मिस्र, थ्रास (वर्तमान बुल्गारिया), मेसिडोनिया आदि स्थानों को भी जीत लिया । इस साम्राज्य में रहने वाले यहूदियों को ''आरमाइक भाषा'' (जो बेबिलोन में बोली जाती थी) अपनाने के लिए विवश किया गया । इससे हिब्रू पृष्ठभूमि में चली गई । हिब्रू को एक और ज़बरदस्त झटका तब लगा जब ईसा से 586 वर्ष पूर्व बेबिलोन के शासक ''नाबुचाडनज़र'' ने यरूशलम पर कब्ज़ा कर लिया और यहूदियों पर तरह - तरह के अत्याचार किए । अत: यहूदियों को अपना वतन छोड़कर विश्व के अन्य भागों में पलायन करना पड़ा । इसे ही ''डायस्पोरा'' (**Diaspora**) कहा जाता है । बाद में ईसा के जन्म के 70 वर्ष बाद यरूशलम के नष्ट हो जाने पर तो बचे-खुचे यहूदी भी वहाँ से अन्यत्र जाने के लिए मजबूर हो गए । इस सबका परिणाम यह हुआ कि सैकड़ों वर्षों तक मेसिपोटामिया के यहूदियों की बोलचाल की भाषा आरमाइक ही बनी रही । जो यहूदी मध्य पूर्व में जा बसे थे, उन्होंने अरबी को अपना लिया। इस प्रकार वे जिस देश में गए, उसी देश की भाषा को अपनाते चले गए । अत: हिब्रू भाषा विस्मृति के गर्त में समाती चली गई ।

आधुनिक युग में जिस व्यक्ति के मन में इस भूली-बिसरी हिब्रू भाषा को पुन: जीवित करने की इच्छा जागी, उसका नाम था -एलिज़र बेन यहूदा । उसका जन्म 1858 में एक सामान्य परिवार में लिथुवानिया (रूस) के एक गाँव में हुआ था । रूस में तब ज़ार का शासन था । यहूदी उसमें अपने को उपेक्षित अनुभव करते थे । अत: यहूदियों की अस्मिता को सम्मान दिलाने के लिए एक राष्ट्रव्यापी आन्दोलन शुरू हुआ, और बेन यहूदा भी उस आन्दोलन से जुड़ गया । अपने जीवट, न्याय के लिए संघर्ष करने की उत्कट भावना और यहूदियों के सम्मान को सर्वोपरि मानने के कारण वह शीघ्र ही उस आन्दोलन का प्रमुख कार्यकर्ता बन गया । इन्हीं दिनों उसके मन में अपनी मूल भाषा हिब्रू के प्रति विशेष प्रेम जागा । बाइबिल में तो हिब्रू

> क्या हम भी अपनी भाषाओं के लिए इससे कुछ प्रेरणा लेंगे ? हमारी भाषाएँ तो मृत नहीं, जीवित हैं ।

सुरक्षित थी ही और इसलिए सिनेगाग (यहूदी प्रार्थना भवन) में उसका प्रयोग होता ही था । बेन यहूदा ने हिब्रू को यहूदियों के आपसी संवाद की भाषा बनाने का विचार लोगों के सामने रखा; पर शुरू में लोगों ने उसके इस विचार का उपहास उड़ाया, और कुछ लोगों ने तो उसे 'पागल' तक कह दिया । उन्हें लगता था कि यहूदी जिस भाषा को भूल चुके हैं, उसमें संवाद कैसे कर सकते हैं ! बाइबिल के जिस अंश में हिब्रू सुरक्षित थी, सामान्य यहूदी तो अब न उसका अर्थ समझते थे और न उसका ठीक से उच्चारण कर सकते थे, तो फिर उसके प्रयोग की बात कैसे सोच सकते थे ? स्थिति कुछ-कुछ वैसी ही थी जैसी आज हमारे समाज में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा पाने वाले बच्चों की संस्कृत के सन्दर्भ में होती जा रही है ।

बेन यहूदा इन आलोचनाओं और प्रतिक्रियाओं से हताश नहीं हुआ, बल्कि इन आलोचनाओं ने उसकी इच्छा को ''दृढ़ संकल्प'' का रूप दे दिया, जिसे साकार करने के लिए उसने जो प्रयास किए उन्हें अपनी सुविधा के लिए हम तीन वर्गों में बाँट सकते हैं - (१) घर में हिब्रू का प्रयोग (२) शिक्षा के माध्यम के रूप में हिब्रू का प्रयोग (३) विभिन्न आवश्यकताओं के लिए हिब्रू में नए शब्दों का निर्माण ।

घर में हिब्रू के प्रयोग की शुरुआत उसने अपने घर से ही की, और इसे इतना विस्तार दे दिया कि जब भी वह किसी यहूदी से घर में या बाहर मिलता तो वार्तालाप में हिब्रू का ही प्रयोग करने का प्रयास करता । अपने इन प्रयासों के प्रति वह कितना गंभीर था, इसका अनुमान इन तथ्यों से लगाया जा सकता है कि जब उसके पहले बच्चे (बेटे) का जन्म हो चुका था और घर में कोई ऐसा व्यक्ति आता जो हिब्रू नहीं बोलता था, तो वह अपने बच्चे को दूसरे कमरे में भेज देता था ताकि बच्चे के कान में दूसरी भाषा का कोई शब्द तक न पड़े । उसकी (पहली) पत्नी रूस की थी और एक दिन जब यहूदा घर पर नहीं था, वह बच्चे को सुलाने के लिए लोरी गाने लगी । अपनी ममता में उसे ध्यान ही नहीं रहा कि लोरी रूसी भाषा में है । संयोग से तभी बेन यहूदा घर में प्रविष्ट हुआ, और इसके बाद घर में जो हंगामा हुआ, उसका विवरण उसी बेटे ने अपनी आत्मकथा में दिया है ।

स्कूल में हिब्रू के माध्यम से शिक्षा देने की कठिनाइयाँ और भी अधिक थीं । एक ओर तो हिब्रू में वर्तमान युग की आवश्यकताओं के अनुरूप शब्दों का अभाव था, तो दूसरी ओर ऐसे लोगों का अभाव था जो हिब्रू माध्यम से शिक्षा देने की ज़िम्मेदारी निभा सकें । बेन यहूदा ने शब्द निर्माता, शब्दकोश निर्माता, शिक्षक, नेता, सभी प्रकार की भूमिकाएँ निभाईं । उसने आइस क्रीम, जेली, आमलेट, रूमाल, तौलिया, गुड़िया, ग्राहक, साइकिल, समाचार पत्र, सम्पादक, सैनिक आदि के लिए हिब्रू में शब्द बनाए । अपने बनाए शब्द वह अपने समाचार पत्र, हत्बवी (**Hatzvi**) में भी छापता था । यह सर्वज्ञात है कि यहूदी लोग सामान्यतया पढ़ने में रुचिशील होते हैं । अत: उसके प्रयासों की जानकारी केवल फिलिस्तीन में नहीं, विश्व में यहूदी जहाँ भी थे , वहाँ तक पहुँच गई।

उसकी निष्ठा रंग लाई । उसके संकल्प के आगे अन्यमनस्क और उदासीन लोगों के मन में भी स्वभाषा प्रेम जागा । अब वे उसके आंदोलन से धीरे-धीरे जुड़ने लगे । हिब्रू भाषा को जीवित करने के लिए उसने दिसंबर 1890 में ''हिब्रू लैंगुएज काउन्सिल'' बनाई , पर बाद में कार्य की गुरुता का अहसास होने पर उसे अकेडमी का रूप दिया । तब जाकर उसका स्वप्न साकार होता दिखाई देने लगा ।

प्रारम्भ में बेन यहूदा ने बाइबिल वाली प्राचीन हिब्रू को ही पुनर्जीवित करने की कोशिश की थी, पर डायस्पोरा के बाद से यहूदी काफी लम्बे समय से विभिन्न स्थानों पर रह रहे थे, और उन्हीं स्थानों की भाषाओं का प्रयोग करते आ रहे थे, अत: उन्हीं भाषाओं के अभ्यासी बन चुके थे । ऐसी स्थिति में बेन यहूदा ने भी

''आधुनिक हिब्रू'' का जो रूप विकसित किया, उसमें रूसी, अरबी, अंग्रेज़ी आदि के भी अनेक शब्द एवं अन्य विशेषताएँ आ गईं । बेन यहूदा अपने समाचार पत्र में जो शब्द प्रकाशित करता रहा था, बाद में उन्हें संकलित करके तथा अन्य भी अनेक शब्द बनाकर उसने एक विशाल शब्दकोश ''ए कम्प्लीट डिक्शनरी ऑफ़ ऐन्शिएंट एंड मार्डर्न हिब्रू'' तैयार किया जो 12 खण्डों में है; पर इस कोश का काम उसके जीवन काल में पूरा नहीं हो पाया, इसे उसके देहांत के बाद उसकी दूसरी पत्नी और बेटे ने पूरा किया । यह शब्दकोश आज भी अद्वितीय माना जाता है । आधुनिक हिब्रू की लिपि भी आरमाइक भाषा की लिपि से ली गई और उसे ''स्क्वायर'' नाम दिया गया । इस लिपि को अपनाने का एक विशेष कारण यह था कि पिछले लगभग दो हज़ार वर्ष से इसी लिपि में हिब्रू भाषा वाले बाइबिल के अंश की नक़ल उतारी जाती रही थी । वे इसी लिपि में उसे पढ़ते आ रहे थे और इस प्रकार अब यह उनकी अपनी लिपि बन चुकी थी ।

सन 1948 में जब इज़रायल राष्ट्र का उदय हुआ तो बेन यहूदा के संकल्प को एक नया आयाम मिल गया । उसका तो 64 वर्ष की आयु में सन 1922 में क्षयरोग से निधन हो चुका था, पर उसके सत्प्रयासों से जीवित की गई हिब्रू भाषा इज़रायल की राजभाषा बन गई । ज़रा ध्यान दीजिए कि इज़रायल को बने लगभग उतना ही समय बीता है जितना हमें स्वतंत्र हुए, पर यह यहूदियों का स्वभाषा प्रेम और स्वाभिमान ही है जिसके बल पर वहाँ व्यापार, प्रशासन, शिक्षा, ज्ञान, विज्ञान, साहित्य, कला, राजनीति आदि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हिब्रू का ही प्रयोग हो रहा है । पूरे विश्व में यहूदियों की कुल संख्या लगभग एक करोड़ है, जिनमें से लगभग आधे अर्थात 50 लाख इज़रायल में रहते हैं, पर हिब्रू भाषा केवल इज़रायल में रहने वाले यहूदियों की नहीं, बल्कि पूरे विश्व में बिखरे सभी यहूदियों की भाषा बन चुकी है । यों तो हर यहूदी आज बहु-भाषाभाषी है, पर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित साहित्य की रचना हिब्रू में करना गौरव की बात समझता है । यह इस बात का प्रमाण है कि अगर अपनी भाषा के प्रति अनुराग हो, अपनी भाषा को लेकर स्वाभिमान का भाव हो तो ऐसी भाषा को भी ''जीवित'' किया जा सकता है जिसे दूसरे लोग ''मृत'' समझते हैं । उस भाषा को नया रूप दिया जा सकता है , समाज को नए संस्कार दिए जा सकते हैं और हर बाधा को पार किया जा सकता है । क्या हम भी अपनी भाषाओं के लिए इससे कुछ प्रेरणा लेंगे ? हमारी भाषाएँ तो मृत नहीं, जीवित हैं । हमें तो केवल इन भाषाओं के प्रयोग करने का संकल्प लेना है । अपने स्वभाषा प्रेम और स्वाभिमान को जगाना है । बेन यहूदा का उदाहरण क्या हमारे मन में ऊर्जा का संचार नहीं करता ? अपने अन्दर झाँकिए और अपनी संकल्प शक्ति का परिचय दीजिए ।

agnihotriravindra @yahoo.com

Beacon Signs 1985 Inc.

7040 Torbram Rd. Unit # 4, Mississauga, ONT. L4T 3Z4

Specializing In:

Illuminated Signs awning & pylons

Channel & Neon letters

Banners

Architectural signs

VEHICLE GRAPHICS

Engraving

Silk screen

Silk screen

Design Services

Precision CNC cutout plastic, wood & metal letters & logos

Large format full Colour imaging System

SALES – SERVICE - RENTALS

Manjit Dubey

दुबे परिवार की ओर से हिन्दी चेतना को बहुत बहुत शुभकामनायें

Tel: (905) 678-2859 Fax: (905) 678-1271

E-mail: beaconsigns@bellnet.ca

आलेख

भारतीय एवं पाश्चात्य जीवन मूल्यों की पुनर्परख : 'कौन सी ज़मीन अपनी'

मो. आसिफ खान, भानु चौहान (शोध छात्रा,अ0मु0वि0)

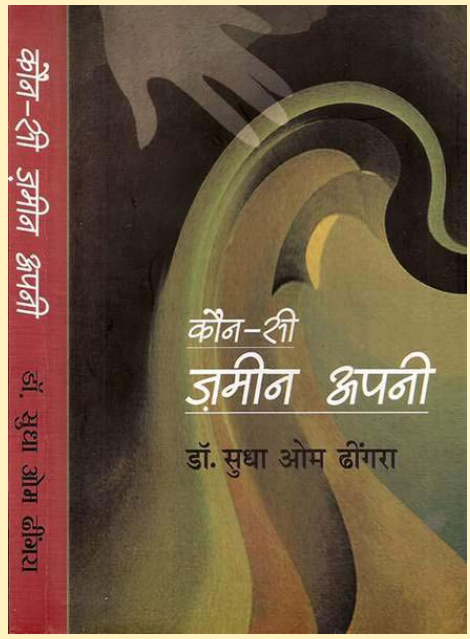

''ज़मीन'' का अर्थ सिर्फ भूमि का एक टुकड़ा भर ही नहीं होता । ज़मीन तो वो आधार है, जिसकी गोद में जीवन रूपी वृक्ष फलता- फूलता पल्लवित होता है और शायद इसी कारण ज़मीन को माँ की संज्ञा दी जाती है । जिस प्रकार माँ अपने बच्चों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करती, उसी प्रकार ज़मीन भी प्रत्येक व्यक्ति को वही आधार प्रदान करती है, जिसका वह अधिकारी है । यह तो मनुष्य है जिसने अपने स्वार्थवश देश, धर्म, जाति, लिंग आदी के आधार पर ज़मीन को जाने कितने ही टुकड़ों में विभाजित कर दिया है. सुधा ओम ढींगरा के कहानी संग्रह 'कौन सी ज़मीन अपनी' में बदलते जीवन-मूल्यों से प्रभावित, जीवन के प्रत्येक स्तर पर अपनी ज़मीन, अपने आधार, अपने अस्तित्व की तलाश की गई है ।

मानव जीवन-मूल्य सदा परिवर्तित होते आ रहे हैं । मनुष्य के पारस्परिक संबंधों, क्रिया-कलापों, उनके सोचने -विचारने के तौर – तरीकों, उनकी मान्यताओं,उनके विश्वासों,उनकी रीति–नीतियों आदि का प्रत्यक्ष सम्बन्ध जीवन की एक विशिष्ट प्रणाली से हो सकता है । इससे उनके व्यवहार नियंत्रित और नियमित होते हैं । यह जीवन प्रणाली कुछ विशिष्ट सिद्धांतों पर खड़ी होती है, जिन्हें जीवन–मूल्य कहा जाता है' ।[1] आज जीवन–मूल्य में जो बदलाव आया है, उसमें रिश्ते–नातों, परम्पराओं, मान्यताओं, रीति-रिवाजों, भावनाओं को तोड़कर रख दिया है । परिवर्तन के नाम पर मानवीय मूल्यों को दरकिनार कर स्वार्थ सिद्धि किस हद तक उचित है? यह प्रश्न सुधा जी की प्रत्येक कहानी में उभरकर आता है । 'कौन सी ज़मीन अपनी' अपने देश की मिटटी से दूर रहकर भी उसकी सुनहली यादों को हृदय में बसाये ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो प्रत्येक क्षण, अपने देश, अपनी मिटटी, अपने रिश्तों के पास वापस आने के सपने देखता है– ''ओय मैंने अपना बुढ़ापा यहाँ नहीं काटना, यह जवानों का देश है, मैं तो पंजाब के खेतों में, अपनी आखिरी सांसे लेना चाहता हूँ ।''[2] अमेरिका की बनावटी, बेरंगी दुनिया उसे स्वर्ग में काले पानी की सज़ा लगती है । अपने देश, रिश्तों आदि से प्रेम और मिलने की उत्कंठा में वह यह भी नहीं सोच पता कि बदलते जीवन–मूल्यों ने विश्व के प्रत्येक कोने को प्रभावित किया है और जब भारत आने पर 'पैसों की गर्मी से आए रिश्तों के ठंडेपन' का एहसास होता है, तो वह टूट जाता है–''ज़मीनों ने रिश्तों बाँट दिए थे, जिन पर सरदार मनजीत सिंह ने सारी उम्र मान किया था...संबंधों के लाक्षागृह के जलने से अधिक वह बीजी, दार जी के बदलते मूल्यों और मान्यताओं से आहत हुआ था....''जान नहीं पा रहा हूँ कि कौन सी ज़मीन अपनी है'' ।[3]

''आत्मकेंद्रित मनोवृति के परिणामस्वरुप संयुक्त परिवार में टूटन आने लगी है । नगरीय जीवन के बारे में बढ़ता हुआ आकर्षण, संयुक्त परिवारों की टूटन से आत्मीय भावों में आई अवरुद्धता, बेईमानी के कारण नैतिकता में आयी टूटनशीलता आदि तथ्य मूल्य विघटन में महत्वपूर्ण योगदान निभा रहे हैं ।''[4] यही टूटनशीलता सुधा जी की कहानी 'बिखरते रिश्ते' में भी देखने को मिलती है । आज ''परिवार की अवधारणा संकुचित होकर केवल पति-पत्नी और बच्चों में सिमट रह गई है । मूल्य विघटन के कारण इस प्रकार के परिवार भी टूट रहे है।''[5] ऐसी स्थिति में परिवार में उन माता-पिता के लिए भी स्थान नहीं है, जो अपने जीवन भर की पूंजी, प्यार, विश्वास आदि संतान की खुशी के लिए हँसते-हँसते न्यौछावर कर देते हैं । 'बिखरते रिश्ते' माता-पिता का सिर्फ अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए इस्तेमाल करने वाले उन असंवेदनशील संतानों की कहानी है जो अपनी स्वार्थपूर्ति के पश्चात् बेकार समान की भांति माता-पिता को वृद्ध आश्रम भेज देते हैं । अपनी ही संतानों के व्यवहार से आहत माता-पिता अपने ''बेटों की हद क्या है...?''[6] देखते-देखते जड़वत जीवन जीते हुए मृत्यु के इंतज़ार

में जीवन के शेष दिन वृद्ध आश्रम में काट देते हैं ।

भारत ही नहीं, अमेरिका भी मूल्यों के इस विघटन से अप्रभावित नहीं है । सुधा जी की कहानी 'सूरज क्यों निकलता है?'' अमेरिकी पृष्ठभूमि में गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन करने वाले पीटर और जेम्स की कहानी है जो अपनी कामचोरी व आरामतलबी के चलते कोई काम नहीं करना चाहते । ग़रीबों के लिए चलाई जाने वाली सरकारी योजनाओं का लाभ उठाने की लत से उनका पूरा परिवार इस हद तक ग्रस्त है कि परिवार, रिश्ते, उनका आपसी प्रेम ये सब कोई महत्त्व नहीं रखता –''माँ क्या होती, बच्चे को पता नहीं और ममता क्या होती है, टैरी को पता नहीं । बस उसने तो बच्चे को जन्म दिया । ग़रीबी रेखा से नीचे वालों की सरकारी सहायता वेल्फेयर लेने के लिए । हर बच्चे के बाद नए बच्चे के पालन-पोषण हेतु वेल्फेयर से उसे और पैसा मिल जाता था... बेटियाँ माँ के नक़्शे क़दम पर चलती हुई, रोज़ पुरुष बदलती हैं और तीन-तीन बच्चों की माँ बनकर सरकारी भत्ता ले रही हैं । दो बेटे नशा बेचने वाले गिरोह में शामिल होकर न्यूयार्क चले गए, दो चोरी-डकैती में जेल में हैं ।''[7] ऐसे परिवार में पले-बढ़े जेम्स और पीटर भी एक नंबर के पाजी और कामचोर है–''हमारा शरीर बहुत नाज़ुक हैं, ये भारी–भरकम काम नहीं कर सकते । हम भी शरीरों को वैसे ही रखेंगे जैसे ये रहना चाहते हैं । कोई काम नहीं करेगें ।''[8] ये दोनों ही भाई अपनी कामचोरी व आरामतलबी के कारण कहीं न कहीं प्रेमचंद की 'कफन' कहानी के घीसू और माधव का याद दिलाते हैं । पंकज सुबीर भी कहते हैं कि –''ये कहानी कथा सम्राट प्रेमचंद की याद दिलाती है । इसलिए नहीं कि इसकी कथावस्तु या शिल्प में वैसा कुछ है बल्कि इसलिए कि इस कहानी के पुरुष पात्र जेम्स और पीटर को लेखिका ने उसी मिट्टी से गढ़ा है जिस मिट्टी से घीसू और माधव को गढ़ा गया था।''[9] गरीबी, स्वार्थ, लालच, कामचोरी आदि ऐसे तत्त्व हैं जो ''मनुष्य को मनुष्य नहीं रहने देता है बल्कि वह उसे या तो पशु बना देता है या मशीन का पुर्ज़ा ..... मनुष्य जब अपने व्यक्तिगत सुख, स्वार्थ या स्वरक्षा तक सीमित रह जाता है तब वह पशु बन जाता । अपने अस्तित्व की रक्षा उसका एकमात्र मूल्य रह जाता है और सारे मूल्य उसके लिए निरर्थक हो जाते हैं ।''[10] मूल्यों की इसी निरर्थकता को सुधा जी ने इस कहानी में प्रस्तुत किया है ।

प्रवासी ''परदेस में जाकर बसने वाले या रहने वालों''[11] को कहा जाता है और उनके द्वारा रचे साहित्य को प्रवासी-साहित्य । ''विदेश में रह रहे भारतीय साहित्यकारों का साहित्य अक्सर या तो अपनी धरती की याद में रचा गया भावुक साहित्य होता है, अथवा पाश्चात्य जीवन शैली को उकेरता हुआ बोल्ड साहित्य। किन्तु सुधा ओम ढींगरा ने अपनी कहानियों में इन दोनों के बीच का वो मध्य मार्ग तलाशा है, जो कहानियों को न केवल भारत से जोड़े रखता है बल्कि संवेदना के धरातल पर उतरकर पाश्चात्य संस्कृति की पड़ताल भी करता है ।''[12]

> सुधा ओम ढींगरा के कहानी संग्रह 'कौन सी ज़मीन अपनी' में बदलते जीवन-मूल्यों से प्रभावित, जीवन के प्रत्येक स्तर पर अपनी ज़मीन, अपने आधार, अपने अस्तित्व की तलाश की गई है ।

''टारनेडो'' कहानी मातृत्व सम्बन्धी भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण में भेद स्पष्ट करने वाली कहानी है । जेनिफर और वंदना दोनों ही पति की मृत्यु के पश्चात् एकल मातृव का दायित्व निभाती दो स्त्रियाँ है जिनके मूल्यों एवं सिद्धांतों में अंतर है । जेनिफर अमेरिकी परिवेश में पली-बढ़ी आज़ाद ख्याल, जीवन का भरपूर आनंद उठाती हुई महिला है । उसके अनुसार ''जैसे खाना-पीना शरीर के लिए ज़रूरी है, वैसे ही प्यार और सेक्स । एक पार्टनर चला जाए, दूसरा अपनी इच्छाएँ क्यों मारे?''[13] अपनी इसी इच्छा की पूर्ति हेतु पीटर की मृत्यु के डेढ़ महीने बाद ही डेटिंग शुरू कर देती है । जोन,जान, स्टीव, माइकिल आदि नाम तो बस साधन मात्र हैं अपने अकेलेपन को भरने के लिए । उसकी इस चाह में बेटी क्रिस्टी कहीं पीछे छुट जाती है ।

अपनी माँ से मिली उपेक्षा और अवेहलना की पूर्ति वह सहेली सोनल की माँ वंदना में करती है । वंदना भी पति की कमी को महसूस करती है किन्तु ''पुरुष संसर्ग की उसे कभी महसूस न होती ''[14] वंदना सोनल व क्रिस्टी दोनों को अपनी ममता की छाँव में आश्रय देती है । जेनिफर के स्वार्थ की अति तो तब हो जाती है जब उनका ब्वायफ्रेंड केलब क्रिस्टी के साथ बदसलूकी करता है तो वह अपनी बेटी का यकीन नहीं करती और उसकी इस बात को अपनी माँ के प्रति ईर्ष्या कहती है । अंततः माँ के केलब से शादी करके आने पर घर छोड़कर जाने के लिए विवश हो जाती है । इस प्रकार सुधा जी ने ''टारनेडो'' कहानी में मातृत्व सम्बन्धी भारतीय व पाश्चात्य मूल्यों के अंतर की तुलना करते हुए भारतीय मूल्यों की प्रतिष्ठा की है । किंतु ऐसा नहीं है कि भारतीय होने के कारण वे अमेरिकी संस्कृति के प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाती है । वह एक लेखक हैं और वास्तविक लेखक तो वही होता है जो निरपेक्ष और तटस्थ दृष्टि से लेखकीय कर्म को अंजाम देता है । सुधा जी का लेखन भी इसका अपवाद नहीं है इसका प्रमाण है कहानी –''ऐसी भी होली'' । यह ऐसी युवती (वेनेसा) की कहानी है जो विदेश में जन्मी- पढ़ी होने के बावजूद भी भारतीय पारिवारिक जीवन-मूल्यों में गहरी आस्था रखती है और उसे बनाये रखने के लिए हर संभव प्रयास करती हुई रूठे परिजनों को मनाने में सफल होती है ।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था के सिद्धांतों से मोहभंग भी परिवर्तित जीवन-मूल्यों का ही परिणाम है । ''पितृसत्तावस्तुतः जीवन का रवैया है, जीवन की शैली और मूल्यों की जननी है ।''[15] इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री को दोयम दर्जे का स्थान मिला । संपत्ति, शिक्षा, सत्ता राजनीतिक अधिकारों एवं सामाजिक अधिकारों से स्त्री को वंचित होना पड़ा । उसे माँ, बहन, पत्नी, बेटी आदि पुरुष से सम्बन्धित रिश्तों के रूप में ही पहचान मिली । उसके अस्तित्व, उसकी अस्मिता, उसकी अपनी

पहचान का कोई मूल्य नहीं था, किन्तु आज नारी प्रत्येक स्तर पर पितृसत्तात्मक व्यवस्था के इन जड़ मूल्यों के प्रति अपना विरोध जता रही है । सुधा जी की ''क्षितिज से परे'', ''उसका आकाश धुंधला है...'', ''परिचय की खोज'' कहानियाँ भी इसी विरोध को स्वर देने वाली कहानियाँ हैं । ''क्षितिज से परे'' पितृसत्तात्मक व्यवस्था के जड़ मूल्यों के प्रति मूक विद्रोह की कहानी है ।''औरत गृहस्थी को कभी तोड़ना नहीं चाहती, उसने बड़े प्यार और यत्न से उसे खड़ा किया होता है । जब उनके स्वाभिमान और सम्मान के चिथड़े उस गृहस्थी में रोज़ उड़ने लगते हैं तो वह उसे छोड़ने पर मजबूर हो जाती है । बाकी बची औरत को संभालना चाहती है ।'' [16]

आज नारी सिर्फ रिश्तों में बंधकर, घर की चारदीवारी में घुटकर व पति को देवता मानकर नहीं जीना चाहती और अपने आत्मसम्मान की कीमत पर तो बिलकुल नहीं । किन्तु पुरुषवादी मानसिकता में आज भी बदलाव नहीं आया है । '' वे आज भी चालीस साल पहले की मानसिकता में जी रहे हैं....आज तक निकल नहीं पाए, निकलने की कोशिश भी नहीं करते । ''[17] आज नारी पुरुषों की बनायी दुनिया में उसके बनाये नियमों व स्वार्थी मूल्यों पर चलते-चलते थक गयी है । उसे भी वह प्यार और सम्मान चाहिए जो उसे अब तक प्राप्त नहीं हुआ, जबकि पुरुष को सहज ही सिर्फ पुरुष होने के कारण उसकी प्राप्ति होती रही है । इसलिए नारी ने इन कुंठित व रुढ़िवादी मूल्यों को नकारकर अपने जीवन के नए अर्थ ढूँढने शुरू कर दिए हैं–''भावनात्मक स्तर पर मैं उसने आगे निकाल चुकी हूँ ...क्षितिज से परे... मैं सचमुच सुलभ से रिलेट नहीं कर सकती ।'' [18] इस कहानी के संबध में पंकज सुबीर कहते हैं कि –''क्षितिज से परे'' वो कहानी है जिसका ज़िक्र बार-बार किया जाना आवश्यक है । ये कहानी बिलकुल चौंका देने वाले तरीके से सामने आती है । स्त्री को दोयम दर्जे का समझने वाले पुरुष समाज के प्रति यह एक मौन क्रांति का दस्तावेज है । इसमें विद्रोह के लिए कहीं कोई शोर शराबा या नारे बाज़ी नहीं हैं । आत्ममुग्ध पुरुष के नारसीसिज्म का दंश झेलती एकाकी स्त्री का प्रतिकार इतना सधा हुआ है कि उसकी गूँज हर सन्नाटे को भरती हुई गुज़रती है ।''[19]

''उसका आकाश धुंधला है''... भी पढ़े-लिखे सुशिक्षित सम्भ्रांत परिवार में पल-पल कुचले जाते आत्मसम्मान की कहानी है । कालेज में हॉकी की गोलकीपर, विद्यार्थी परिषद् की नेता, अपनी खूबसूरती व आत्मविश्वास से न सिर्फ स्वयं का बल्कि अपनी सहेली का बचाव करने वाली सुहानी सुरजीत से विवाह-बंधन में बांध दी जाती है । जहाँ वह 'एजुकेटिड इल्लिट्रेट' लोगों के मध्य कुचले, स्वाभिमान से आहात जीवन जीने को मजबूर है–''पापाजी ने हैसियत से ज़्यादा दहेज दिया तो भाभियों के मुँह फूल गए और जब पापा ने संपत्ति में भी मुझे हिस्सा दे दिया तो, सगे भाई परायों जैसा व्यवहार करने लगे है । ससुराल वाले खुश है कि उन्हें बहुत कुछ मिल गया । पर मुझे क्या मिला । तीन बेटियां और ससुराल के ताने, लानतें और भाइयों की बेरुखी ।'' [20] यहाँ सिर्फ सुहानी ही नहीं बल्कि पितृसत्तात्मक पारिवारिक व्यवस्था में थोड़े बहुत अंतर से लगभग प्रत्येक नारी की स्थिति है । दो भागों (विवाह से पूर्व और बाद) में बँटे जीवन में नारी स्वयं भी दो भागों में बँटकर रह जाती है । न मायका उसका अपना हो पता है और न ससुराल । ऐसे में यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो उठता है कि उसके लिए ''कौन सी ज़मीन अपनी'' है जहाँ वह अपनी इच्छानुसार सम्मानित जीवन जी सकती है । अपने लिए ऐसी ज़मीन की तलाश सुधाजी ने सुरभि द्वारा सुहानी में पुनः आत्माविशवास जाग्रत करने के निश्चय में की है–''जानती हूँ कि उसका आकाश धुंधला है, पर वह घने अँधेरे के अंतिम छोर से फूटते भोर की सलोनी किरण सी सुहानी के जीवन में रोशनी भरने की कोशिश ज़रूर करेगी, वह उसे मर्यादाओं के नाम पर ग़लत समझौते नहीं करने देगी ।[21] अपनी अस्मिता प्राप्ति की यह राह आसान नहीं है इसके लिए जड़ मूल्यों को तोड़कर अपने पैरों पर खड़ा होना आवश्यक है, इसके संकेत सुधा जी ने कहानी के अंत में दिए हैं । पितृसत्तात्मक व्यवस्था सभी महत्वपूर्ण अधिकार पुरुषों को देती है । ऐसी

मो. आसिफ खान

भानु चौहान

(शोध छात्रा,अ0मु0वि0)

व्यवस्था के भीतर लड़की के जीवन उसके अस्तित्व की प्रतिष्ठा पर प्रश्न चिन्ह स्वतः ही लग जाता है । एक लड़की को समाज में क्या स्थान दिया जाता है इसका प्रमाण तो कन्या भ्रूण हत्या के बढ़ते आंकड़े स्वयं ही दे देते हैं । उसी सच्चाई को अभिव्यक्त करने वाली कहानी है–''लड़की थी वह'' । नए पुराने मूल्यों के बीच झूलती नारी कभी पुराने परम्परावादी मूल्यों की ओर मुड़ती है तो कभी नए मूल्यों के प्रभाव में निर्णय लेती है । इस राह पर चलते हुए कभी वह सकारात्मकता की ओर बढ़ती है तो कई बार नकारात्मक मूल्य उस पर हावी हो जाते हैं । ऐसे ही भटकाव की स्थिति है अनुपमा की । एक ओर वह नारी होकर एक पुरुष के समान अपने माँ-बाप को सुरक्षा प्रदान करती है, भाई-बहनों की शिक्षा का दायित्व निभाती है, वहीं दूसरी ओर झूठी सामाजिक मान-मर्यादा को बनाये रखने के लिए अपने विवाह-पूर्व उत्पन्न शिशु को फालतू सामान की भांति छोड़ देती है । ऐसी स्थिति में प्रश्न यह उठता है कि झूठी सामाजिक मान-मर्यादा बनाये रखने के लिए मातृत्व व मानवीय मूल्यों के ताक पर रखकर अपने नवजात शिशु को त्याग देना कहाँ तक उचित है? इस प्रश्न का उत्तर भी सुधा जी कहानी के अंत में अनुपमा द्वारा शिशु को अपनाने के रूप में दिया है । उनकी दृष्टि में मान-मर्यादा से भी अधिक महत्त्व है मानवीय मूल्यों का ।''लड़की अविवाहिता है, गुनहगार नहीं! काश! लेने वाले यह समझ सकें ।'' [22] वाक्य पूरे समाज को कहीं संदेश देता है कि मानवीय मूल्य से बढ़कर कुछ भी नहीं है । यदि नारी स्वतंत्र जीवन अपनी शर्तों पर जीना चाहती है तो उसके परिणामों का सामना करने की हिम्मत भी उसे दिखानी होगी

। निश्चत ही यह अत्यंत कठिन और हिम्मत का भरा कदम है जिसकी हिम्मत पुरुष समाज भी आज तक नहीं कर पाया है । ऐसे ही पुरुष समाज पर करारा व्यंग करने वाली कहानी है– ''परिचय की खोज'' जो पुरुष वैचारिक स्तर पर तो नारी–अस्मिता, नारी-चेतना की बात करते हैं किन्तु व्यावारिक जीवन में स्वयं उसका शोषण करने का कोई मौका हाथ से गंवाना नहीं चाहते । उनकी झूठी वैचारिकता की पोल खोलती है ये कहानी । परिवर्तित मूल्यों को वैचारिक स्तर पर मानना एक बात है और उन्हें जीवन में आत्मसात करना दूसरी । आज हमारा पढ़ा-लिखा बुद्धिजीवी पुरुष-समाज वैचारिक स्तर पर बड़ी-बड़ी बातें करता है किन्तु व्यवहार में प्रचलित पुरुषवादी मानसिकता से बाहर नहीं निकल पाया है या ये कह सकते है कि निकलना नहीं चाहता है । इसी मानसिकता के कारण आज भी नारी अपने परिचय की खोज में जलती चिताओं-सी दर-दर घूम रही है ।

संदर्भ

1.डॉ. क्षितिज यादवराव धूमाल, बीसवी सदी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में प्रवृत्तिमूलक अनुशीलन, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपूर 2006 पृ0 45।

2. सुधा ओम ढींगरा, कौन सी ज़मीन अपनी, भावना प्रकाशन दिल्ली, 2010 पृ0 9।

3. वही पृ0 18-19।

4.डॉ. क्षितिज यादवराव धूमाल, बीसवी सदी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में प्रवृत्तिमूलक अनुशीलन, अन्नपूर्णा प्रकाशन,कानपूर 2006 पृ0 101 ।

5.राहुल भरद्वाज, नवें दशक की कहानियाँ में मूल्य विघटन (डॉ. क्षितिज यादवराव धूमाल, पृ0 101 से उद्दृत) ।

6.सुधा ओम ढींगरा, कौन सी ज़मीन अपनी, भावना प्रकाशन दिल्ली, 2010 पृ0 75 ।

7.वही 43-44 ।8.वही पृ0 45 ।

9. हिंदी चेतना, सं0 सुधा ओम ढींगरा पृ 52 ।

10.डॉ. हरदयाल, हिंदी कहानी परम्परा और प्रगति, वाणी प्रकाशन पृ0 41 ।

11. सं0 रामचंद्र वर्मा, प्रमाणिक हिंदी कोष, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1997 पृ0 546 ।

12.सुधा ओम ढींगरा, कौन सी ज़मीन अपनी, भावना प्रकाशन दिल्ली, 2010 फ्लैप से ।

13.वही पृ0 37 । 14. वही पृ0 29-30 ।

15. जगदीश्वर, स्त्री-अस्मिता साहित्य और विचारधारा, आनंद प्रकाशन कोल्कता 2004 पृ0 257 ।

16.सुधा ओम ढींगरा, कौन सी ज़मीन अपनी, भावना प्रकाशन दिल्ली, 2010 पृ0 83 ।

17.वही 93 18.वही 94 ।

19.सुधा ओम ढींगरा, कौन सी ज़मीन अपनी, भावना प्रकाशन दिल्ली, 2010 फ्लेप से ।

20.वही पृ0 110 ।21. वही पृ0 120 ।

22.वही पृ0 53।

ग़ज़लें

●

टुकड़ों - टुकड़ों में बँटा है आदमी
इक वसीयत बन गया है आदमी

घर की दीवारें बहुत ऊँची हुईं
अब दरीचे ढूँढता है आदमी

प्यार की सौग़ातें लेता है मगर
नफ़रतों को बाँटता है आदमी

साज़िश-ए-तक़दीर में जकड़ा हुआ
लो, खिलौना बन गया है आदमी

कुछ तो हों मज़बूत उसके हौसले
क्यों बिखरना चाहता है आदमी

◆◆◆

देवी नागरानी (अमेरिका)
dnangrani@gmail.com

●

इधर ये ज़ुबाँ कुछ बताती नहीं है
उधर आँख कुछ भी छुपाती नहीं है

पता है रिहाई की दुश्वारियाँ पर
ये क़ैदे क़फ़स भी तो भाती नहीं है

कमी रह गयी होगी कुछ तो कशिश में
सदा लौट कर यूँ ही आती नहीं है

मुझे रास वीरानियाँ आ गयी हैं
तिरी याद भी अब सताती नहीं है

ख़फ़ा है मेहरबान है कौन जाने
हवा जब दिये को बुझाती नहीं है

रिआया समझदार होने लगी अब
अदा हुक्मराँ की लुभाती नहीं है

अगर हो गए सोच में आप बूढ़े
तो बारिश बदन को जलाती नहीं है

गुमाँ प्यार का हो रहा तब से 'नीरज'
क़सम जब से मेरी वो खाती नहीं है

◆◆◆

नीरज गोस्वामी (भारत)
neeraj1950@gmail.com

●

पड़ा हुआ जो ये पानी में जाल है साहब
यक़ीन जानिये दरिया की चाल है साहब

ख़िलाफ़ ज़ुल्म के ग़ुस्सा है जो ये लोगों में
ज़रा सी देर का केवल उबाल है साहब

हरेक बात पे रो रो के बात मनवाना
ये आँसुओं का ग़लत इस्तेमाल है साहब

सुकूने दिल से है दौलत का बैर जग ज़ाहिर
अमीर है वो मगर ख़स्ताहाल है साहब

नदी में रह के मगरमछ से बैर रखता है
उस आदमी की भी हिम्मत कमाल है साहब

कहाँ कहाँ मेरे हिस्से के ख़्वाब बिखरे हैं
हमारी नींद का जायज़ सवाल है साहब

मैं टूटते हुए घर को बचा नहीं पाया
अभी तलक मुझे इसका मलाल है साहब

◆◆◆

कहीं चौखट कहीं छप्पर नहीं है
यहाँ कोई मुकम्मल घर नहीं है

सुकूँ से पाँव फैलाऊँ तो कैसे
मेरी इतनी बड़ी चादर नहीं है

मैं मुद्दत बाद तुमसे मिल रहा हूँ
ख़ुशी से आँख फिर क्यों तर नहीं है

नज़र डाली तो है उसने इधर भी
मगर उसकी नज़र मुझ पर नहीं है

अजब ये संगसारी है! बज़ाहिर
किसी के हाथ में पत्थर नहीं है

◆◆◆

राजीव भरोल (अमेरिका)
rajeev.bharol@gmail.com

BEST WAY CARPET & RUGS INC.

$50.00 Off All wall to wall Carpet with purchase up to 300 sq. ft.
10% Off all Area Rugs

Free delivery under pad Installation

• Residential • Commercial • Industrial • Motels & Restaurants

Free Shop at Home Service Call: (416) 748-6248

• Broadloom • Area Rugs • Runners • Vinyl & Hardwood • Blinds & Venetian
Custom Rugs • All kind of Vacuums

Interest Free 6 months No Payment OAC

7003, Steeles Ave. Unit 8
Etobicoke
ON M9W OA2
Ph: 416-748-6248
Fax: 416-748-6249

1 Select Ave, Unit 1
Scarborough
ON M1V 5J3
Ph: 416-321-6248
Fax: 416-321-0929

लघुकथाएँ

●सुमन कुमार घई ●डॉ. श्याम सुन्दर 'दीप्ति'
●दीपक 'मशाल'

जिजीविषा

दीपक 'मशाल' (यू.के.)

एक-दो रोज़ की बात होती तो इतना क्लेश न होता, लेकिन जब ये रोज़ की ही बात हो गई तो एक दिन बहूरानी भड़क गई।

''देखिये जी, आप अपनी अम्मा से बात कीजिए ज़रा, उनकी सहेली बूढ़ी अम्मा जो रोज़ -रोज़ हमारे घर में रहने-खाने चली आती हैं वो मुझे बिलकुल पसंद नहीं।''

''लेकिन कविता, उनके आ जाने से बिस्तर में अशक्त पड़ीं अपनी अम्मा का जी लगा रहता है..।'' गृहस्वामी ने समझाने की कोशिश की।

''अरे!! जी लगा रहता है यह क्या बात हुई। आना-जाना हो तो ठीक भी है मगर उन्होंने तो डेरा ही जमा लिया है हमारे घर में..।'' स्वामिनी और भी भड़क उठी।

दूसरी ओर से फिर शांत उत्तर आया, ''अब तुम्हें पता तो है कि बेचारी के बेटों ने घर से निकाल दिया। ऐसी सर्दी में वो जाएँ भी कहाँ?''

''ग़ज़ब ही करते हैं आप ! घर से निकाल दिया तो हमने ठेका ले रखा है क्या उनका? जहाँ जी चाहे जाएँ, हम क्यों उनपर अपनी रोटियाँ बर्बाद करें?'' मामला बढ़ता जा रहा था ।

हार कर गृहस्वामी ने कहा-''ठीक है तुम्हें

जो उचित लगे करो.. उनसे जाकर प्यार से कोई बहाना बना दो।''

''हाँ मैं ही जाती हूँ.. तुम्हारी सज्जनता की इमेज पर कोई आँच नहीं आनी चाहिए, घर लुटे तो लुटे..।'' भुनभुनाती हुई कविता घर के बाहर वाले कमरे में अपनी सास के पास बैठी बूढ़ी अम्मा को जाने को कहने के लिए वहाँ पहुँची। पहुँचकर देखा कि बूढ़ी अम्मा अपनी झुकी कमर, किस्मत और बुढ़ापे का बोझ एक डंडे पर डाले, मैली-कुचैली पोटली काँख में दबाए खुद ही धीरे-धीरे करके घर के बाहर की ओर जा रही थीं। अन्दर चल रही बहस की आवाज़ उन तक न पहुँचती इतना बड़ा घर न था। आँखों में आँसू भरे उसकी बेबस सास अपनी सहेली को रोक भी न सकी।

मगर शाम को रोटियाँ फिर भी बरबाद हुईं। अम्मा खाने की तरफ देखे बगैर भूखी ही सो गई थी।

●

mashal.com@gmail.com

विवशता

सुमन कुमार घई (कैनेडा)

पैराग्रीन बाज़ों के जोड़े ने शहर के मध्य एक ऊँची इमारत की खिड़की के बाहर कंक्रीट की शेल्फ़ को अपने अंडे देने के लिए चुना था। पता नहीं प्रकृति की गोद की चट्टान की बजाय शहर की चट्टानी इमारत उन्हें अपने बच्चे पालने के लिए क्यों अच्छी लगी थी। शहर के समाचार पत्रों में सुर्खियाँ थीं, जीव वैज्ञानिकों में हलचल थी और शहर के पहले से फूले हुए मेयर और भी कुप्पा हुए जा रहे थे। उन्होंने तो कनखियों से मुस्कराते हुए वक्तव्य भी दे डाला था, ''अगर मैं जार्विस स्ट्रीट की साइकिल की लेन को खत्म करके कारों के लिए खोल रहा हूँ, तो पर्यावरण प्रेमी क्यों शोर मचाते हैं कि शहर में प्रदूषण बढ़ेगा? देखो प्रकृति तो स्वयं हमारे शहर को चुन रही है।'' शहर में उनके समर्थक सनसनीखेज समाचार पत्र ने तो सुर्खी दी थी, ''ओंटेरियो में पैराग्रीन बाज़ों की संख्या का विस्फोट - पूरे प्रांत में दस से अधिक जोड़े देखे गए''।

जीव वैज्ञानिक सबसे अधिक संयत थे। वह पूरे आँकड़े जुटाना चाहते थे। उनके आदेशानुसार रात को उस इमारत की और आसपास की इमारतों की बत्तियाँ बंद की जाने लगीं, ताकि बाज़ों को परेशानी न हो। लगा बाज़ों के साथ शहर भी सोने और जागने लगा है। उस खिड़की से ऊपर की मंज़िल की खिड़की में दूरबीन वाला कैमरा लगा दिया गया और एक वैज्ञानिकों की टीम उस पर तैनात हो गई; चौबीस घंटे अंडों और बाज़ों पर नज़र रखने के लिए। आँकड़े भरे जाने लगे कि कितने घंटे मादा बाज़ ने अंडे सेंके और कितनी बार बाज़ ने लौट कर शिकार मादा बाज़ को परोसा।

उस दिन लोग बाग अपने कार्यालयों से घर लौट चुके थे। तैनात वैज्ञानिक को कैमरे के लैंस के कोने में एक आकृति दिखाई दी। उत्सुकता जागी तो उसने कैमरा घुमा कर आकृति पर फोकस किया। आकृति साफ़ दिखाई देने लगी। मेट्रो ग्रोसरी स्टोर के सामने के कचरे के ढोल में से एक बेघर गर्भवती औरत सेब निकाल कर पोंछ रही थी। अपने पेट में पल रहे बच्चे को पलोसते हुए उसने सेब खाना शुरू किया। वैज्ञानिक झल्ला उठा कितनी मूर्ख है ! क्या नहीं जानती दूषित सेब से उसके पेट में पल रहे बच्चे को हानि पहुँच सकता है? क्यों नहीं वह ऐसी औरतों के शरण गृह में चली जाती ,जहाँ इसकी देख भाल हो सकती है। फिर झल्लाते हुए उसने फिर से मादा बाज़ को देखना शुरू कर दिया। उसे पक्षियों की विवशता का अध्ययन करना था कि उन्होंने शहर की चट्टानी इमारत पर अंडे देने क्यों पसंद किए? पर गंदा सेब खाने के लिए विवश गर्भवती औरत छवि अभी उसके कैमरे के लैंस से नहीं हट पा रही थी।

●

sumankghai@gmail.com

बूढ़ा रिक्शेवाला

डॉ. श्याम सुन्दर 'दीप्ति'(भारत)

यूँ तो उसने सर्विस छोड़कर पूरा समय पढ़ने लिखने के बारे में सोच लिया था, पर कॉलेज के प्रिंसिपल के अनुरोध पर, हफ़्ते में दो घंटे आ कर पढ़ाने के लिए सहमत हो गया।

वह क्लास लेने के लिए तैयार हो रहा था। कल की सुबह उसके मन में अभी भी ज्यों की त्यों थी। जब वह बस स्टैंड से रिक्शे के लिए बढ़ा तो दो ही रिक्शेवाले थे। वह पैसे तय कर एक रिक्शे में बैठ गया।

घड़ी देखने लगा। आठ बजने में बीस मिनट थे। उसने अंदाज़ा लगाया, दस बारह मिनटों में पहुँच जाएगा और समय पर क्लास ले लेगा।

पर रिक्शा चलते ही उसे लगा कि रिक्शे की चाल ढीली है। बुज़ुर्ग था। सफ़ेद दाढ़ी। चेहरे पर उम्र के निशान। ज़िन्दगी का सफ़र ख़त्म कर चुकी उस बुज़ुर्ग की हालत तो थी कि वह आराम करे, पर वह तो लोगों को रिक्शे में बैठाकर उनका सफ़र तय करवा रहा था। बूढ़ा कभी गद्दी पर बैठ कर चलाता, कभी रफ़्तार बढ़ाने के लिए खड़ा हो जाता, फिर बैठ जाता। जैसे थक गया हो। उम्र तो थी, थकावट उतारने की।

उसे लगने लगा -जैसे उसने ग़लती की है, बज़ुर्ग रिक्शे वाले को सवारी के लिए तय कर के। पर उस समय खड़े दोनों रिक्शे वाले उसे एक से ही लगे थे।

उसने फिर घड़ी देखी। पाँच मिनट रह गए थे और रास्ता अभी आधा भी नहीं हुआ था। वह अब कर भी क्या सकता था। बुज़ुर्ग को कहे भी तो क्या? उसने सोचा, अगर बज़ुर्ग को राह में छोड़ देगा तो यह उससे ज़्यादती होगी। पता नहीं किस मजबूरी के तहत रिक्शा चलाता होगा।

पसीने से तरबतर उस बुजुर्ग ने जब दस का नोट पकड़ा तो कितनी ही बार रिक्शे के हैंडल के साथ लगाया और कितनी ही बार माथे से.....।

उसने तैयार हो कर ब्रीफकेस उठाया तो पत्नी ने कहा, 'आज क्या बात है जल्दी चल दिए?'

'जल्दी कहाँ? पन्द्रह मिनट पहले ही चला हूँ। कल एक बूढ़े से वास्ता पड़ गया। दस मिनट लेट कर दिया।'

'यह तो आपको सोचना था कि बुजुर्ग के रिक्शे में न बैठते।'

'पर जब चारा ही न हो तो.....।'

बस स्टैंड पर पहुँचा तो अनेक ही रिक्शे वाले थे। सब आगे हो हो कर रिक्शे में बैठने को कहने लगे। कल वाला बुज़ुर्ग भी उनमें से था, पर पीछे खड़ा था।

वह बस से उतर, ब्रीफकेस को नीचे रखकर, पगड़ी को ठीक करने लगा। घड़ी देखी। कल से लगभग पन्द्रह मिनट पहले पहुँच गया था।

पगड़ी ठीक कर, उसने बज़ुर्ग रिक्शे वाले से चलने का इशारा किया।

drdeeptiss@yahoo.co.in

BMS graphics

Choose from a variety of
Birthday - Mundan - Janoi - Anniversary
Indian & western

Wedding Invitations
Choose your own language

शादी, मुंडन,सालगिरह, जनेऊ कोई भी हो शुभ संस्कार।
हर प्रकार के निमंत्रण के लिए हमारी सेवायें हैं सदा तैय्यार।।

21 Bradstone Square, Scarborough, (Toronto) Ontario M1B 1W1
Tel: 416.565.4446 416.292.7959 Fax: 416.292.7969
E-mail: bmsgraphics@rogers.com

कविताएँ

सम्बन्ध अनजाना

डॉ.अनीता कपूर (अमेरिका)

मैंने देखा है
लोग
आपस में बात करते हैं
अक्सर भूल कर चल देते हैं
पीछे नहीं देखते.....
मगर मैं कहती हूँ
किसी से बात कर सकना भी
अपने में एक सम्बन्ध है
कई सम्बन्धों से गहरा सम्बन्ध
इसे नाम
चाहे जो दिया जाए
सम्बन्ध तो सम्बन्ध ही होते हैं....
किसी के प्रति
विशेष आकर्षण अनुभव करना
और लगने लगना असाधारण
वो आकर्षण
हटकर होता है
शारीरिक आकर्षण से
चुम्बकीय होता है
यह रिश्ता....
खींचता है मन को
मन की तरफ
सींचता है
व्यक्तित्व को
पौधे की तरह
फिर खिलते हैं
फूल विचारों के
और आती है सुगंध
अनुभवों की...
तब अपने आप में
हो जाता है पूर्ण
वो सम्बन्ध अनजाना.....

●

anitakapoor.us@gmail.com

एक और साल

पूर्णिमा वर्मन (शारजाह)

लो बीत चला एक और साल

अपनों की प्रीत निभाता सा
कुछ चमक-दमक बिखराता सा
कुछ बारूदों में उड़ता सा
कुछ गलियारों में कुढ़ता सा
हम पात पात वह डाल डाल
लो बीत चला एक और साल

◆

कुछ नारों में खोया खोया
कुछ दुर्घटनाओं में रोया
कुछ गुमसुम और उदासा सा
दो पल हँसने को प्यासा सा
थोड़ी खुशियाँ ज़्यादा मलाल
लो बीत चला एक और साल

◆

भूकम्पों में घबराया सा
कुछ बेसुध लुटा लुटाया सा
घटता ग़रीब के दामन सा
फटता आकाश दावानल सा
कुछ फूल बिछा कुछ दीप बाल
लो बीत चला एक और साल

◆

कुछ शहर शहर चिल्लाता सा
कुछ गाँव गाँव में गाता सा
कुछ कहता कुछ समझाता सा
अपनी बेबसी बताता सा
भीगी आँखें हिलता रूमाल
लो बीत चला एक और साल

●

purnima.varman@gmail.com

गाँव से शहर का सफर

रमेश मित्तल (भारत)

गाँव से शहर का सफर
या, यूँ कहें
गाँव के उबड़ -खाबड़ रास्तों पर
बैलगाड़ी से हिचकोले खाती ज़िन्दगी से
शहर की
समतल सड़कों पर
मोटर गाड़ी सी
तेज़ी से भागती ज़िन्दगी
जिसमें पीछे छोड़ आया हूँ मैं
अपनों को
बैलगाड़ियों में
और, इतनी दूर निकाल आया हूँ उनसे,
कि
खुद को अकेला पाता हूँ
औरों से इतनी ज़्यादा
तरक्की करके भी...
कैसे संभले हुये थे
उन उबड़-खाबड़ रास्तों पर भी
अपनों से मेरे रिश्ते
कैसा लगाव, कैसी गरमाहट थी
उन रिश्तों में
कैसे जकड़े हुये थे एक-दूसरे को
मज़बूती से
गड्ढों पर संतुलन खोते भी
और कहाँ फिसल गये हैं
शहर की चिकनी, चौड़ी,
सपाट सड़कों पर भी
आगे निकलने की होड़ में वे रिश्ते....
मर्म इसका जानता हूँ मैं
सफर किया है मैंने
बैलगाड़ी से
मोटरगाड़ी तक का
या, यूँ कहें
अपनों से
अकेलेपन तक का .....

●

rmtl@yahoo.com

कविताएँ

कैसे छूट पाओगे तुम ?

पंकज त्रिवेदी (भारत)

रिश्ते कभी ख़त्म नहीं होते हैं
रिश्तों के नाम बदल सकते हैं
छल का नकाब उतर जाता है कभी
तो जीने का मज़ा ही और होता है

अपनी भावनाओं से कटुता नहीं होती
मन की बेरुखी से कड़वाहट होती है
दिल तो आखिर दिल है,
जो सोचता नहीं
वो खिलता हैं फूलों सा,
बहता हैं झरनों सा

कुछ पल होते हैं
अपने निजित्व से संवाद करने के
पता नहीं क्यूँ बेहाल हो जाते हैं हम !

दायरा बढ़ता है वक्त का, संबंधों का
बात सिर्फ इतनी हैं...
आओ प्यार करें, संवाद करें
कहने को तो बहुत कुछ है मगर
हर पल ऐसे बीत जाता है,
तुम कौन, मैं कौन..?

कैसे काटोगे तुम रिश्ते की जड़ को
जितनी काटोगे,
दुगनी चुभेगी तुम्हें
बेचैन दिल
धड़कन से उठती सिसकियाँ
कौन सुनता है भला... !

यह रिश्ता है अजर-अमर, अनमोल
कैसे छूट पाओगे तुम ?

editornawya@gmail.com

भू-स्तवन (पूर्वार्द्ध)

प्रतिभा सक्सेना (अमेरिका)

एक पग को टेक तिरछी नृत्य की मुद्रा बनाये ।
ऊष्ण शीत सुबंध, विषुवत् मेखला कटि में सजाये
देह के हर लास्य का लालित्य वर्तुल द्वीप खाड़ी,
हरित अँगिया मखमली सागर लहरती नील साड़ी ।

*

ऋत नियम धारे, धरे हो, सृष्टि का अनिवार्य यह क्रम
घूम भर भर लट्टुओं सा, ललित लीला लोल नर्तन,
सूर्य उत्तर और दक्षिण अयन रह रह कर निहारे
सप्त-विंशति कलायें धर चन्द्रमा आरति उतारे ।

*

नित नये परिधान ले ऋतुयें बनी परिचारिकायें,
गमन का पथ घेर चलतीं व्योम की नीहारिकायें।
इस अपरिमित नील के विस्तार में लीला-विलासिनि,
अवनि देवि वसुन्धरे, हरि-पत्नि प्रकृति की सुकृति तुम।

*

अनगिनत उडुगन तुम्हारे पंथ पर दीपक जलाये,
सप्तऋषि देते परिक्रम, अटल ध्रुव माथे सजाये।
हवाओं के रुख तुम्हारे इंगितों पर हो विवर्तित
घाटियों में शंख ध्वनि भर गिरि शिखर हर छोर गुंजित।

*

शुक्ल-कृष्ण द्विपक्षिणी धीमे उतरतीं रात्रियाँ जब
विभुमयी होकर दिशाओं में कुहक-सा पूरतीं नव
चँवर लहराता चतुर्दिश घूमता पवमान चंचल
मेघ-मालायें उढ़ायें बिजलियों से खचित आँचल,

*

ताप हरने के लिये भर-भर अँजलियाँ अर्घ्य का जल
रजतवर्णी राशि हिम की कहीं, मरुथल कहीं वनथल,
सप्त द्वीप सुशोभिता, पयधार मय पर्वत अटल दृढ़
घाटियाँ, मैदान, सर, सरिता, सहित गिरि-श्रृँखला धर,

*

खग-मृगों से सेविता, गुंजित गगन रंजित दिशांगन,
जन्म लेने जहाँ लालायित रहे हरदम अमरगण।
अंतरिक्षों की प्रवाहित व्योम गंगा में थिरकती,
नील द्युति धारे गगन की वीथियों को दीप्त करतीं

*

वृक्ष नत-शिर पुष्प-पल्लव प्रीति हेतु तुम्हें चढ़ाते
खग-कुलों के गान, स्तुति मंत्र की शब्दावली से
नित नये आकार रचतीं, पोसतीं, विस्तारतीं तुम
काल की गलमाल को दे दान, नित्य सँवारतीं तुम ।

pratibha_saksena@yahoo.com

खुदकुशी

दिपाली सांगवान (भारत)

नहीं होगा
किसी ख़ुशी का नामकरण
ना जन्मेगी उम्मीद कोई
तरसेंगे अब दो बूँद प्रेम को
उम्र से लम्बा पड़ेगा अकाल
एहसासों का ...
बंजर होगा दिल
आँखें फाड़ के देखेगा आकाश
और बरसायेगा नमक...

गले से लग कर
सिसकियाँ बहाने का मौसम
कब का जा चुका
छीन ले गया आवाज़
वक़्त का फरमान...
कैसी दस्तक हुई
कि दरवाज़ा खोलने के साथ
ज़िन्दगी लाँघ गई देहलीज़...
ये बेस्वाद ख़ालीपन
मेरी थाली में
किसने परोस दिया...

पलकों के किवाड़ खुलेंगे
हर आहट के साथ
लहराएगा साया एक
और फ़ैल जायेगा घुप्प अँधेरा
फिर तुम चाहे चाँद लाके रखना
मेरे माथे पर
मैं न जागूँगी...

heyitsmekriti@gmail.com

कविताएँ

हमारा दौर : कुछ चित्र

जितेन्द्र 'जौहर'

काल-वक्ष पर टाँक रहे हो, कायरता के मंज़र जैसे!
बाहर से हलचलविहीन पर, भीतर एक बवंडर जैसे!

क्रोध-ज्वार मुट्ठी में भींचे, साहस थर-थर काँप रहा है।
ध्वनिविहीन विप्लव का स्वर, अम्बर की दूरी नाप रहा है।
श्वेत-श्याममय लाल कोष्ठकों, से विषाद-सा टपक रहा है।
भित्ति-वक्ष से सटा सिसकता, टँगा कील पर फड़क रहा है।
मरी हुई तारीख़ों वाला, जीवन एक कलंडर जैसे!
बाहर से हलचलविहीन पर, भीतर एक बवंडर जैसे!

चाटुकारिता के कौशल ने, नाप लिये हैं शिखर समूचे।
जीवनभर तुम रहे कर्मरत, एक इंच ऊपर न पहुँचे।
गतिमय स्थिरता के साधक, लहर-वलय में ख़ूब विचरते।
सीमाओं में बँधे निरंतर, पर असीम का अभिनय करते।
ठहरे हुए जलाशय-से हो, सपने किन्तु समुन्दर जैसे!
बाहर से हलचलविहीन पर, भीतर एक बवंडर जैसे!

धराधाम की प्यास विकल है, मेघ सिन्धु में बरस रहे हैं।
वृक्ष खड़े निर्पात, सरोवर, बूँद-बूँद को तरस रहे हैं।
सीख लिया है आँख मूँदना, कर्ण-कुहर अब नहीं खोलते।
कुछ भी होता रहे कहीं भी, अधर तुम्हारे नहीं डोलते।
विकृत अनुयायी-स्वरूप में, गाँधी जी के बन्दर जैसे!
बाहर से हलचलविहीन पर, भीतर एक बवंडर जैसे!

काल-वक्ष पर टाँक रहे हो, कायरता के मंज़र जैसे!
बाहर से हलचलविहीन पर, भीतर एक बवंडर जैसे!

●

jjauharpoet@gmail.com

तुम्हारे नाम / मेरे नाम

रश्मि प्रभा (भारत)

नाव तो मैंने कितनी सारी बनाई थीं
काग़ज़ की ही सही....
तुम चेहरे पर कितनी भी शून्यता लाओ
पर तुम इस सत्य से परे नहीं !
तभी तो
हर करवट पे
तुमको मैं दिखाई देती हूँ
तुम चाहते हो खींचना
कुछ लकीरें मेरे चेहरे पर
ताकि एक भी नाव में सुराख हो
तो तुम सर पटक सको
चिल्ला सको....
तुम्हें आदत हो गई है
संकरी गुफाओं के अंधेरों से गुज़रने की
प्रकाशमय ज़िन्दगी
तुम चाहते तो हो
पर आदतें !
और सच यह भी है -
कि तुम मेरी हर नाव को
अपने सबसे प्रिय संदूक में रखते हो
सहेज-सहेज कर
पर .... !
मुझे भी कोई शिकायत नहीं....
हाँ मेरी हर नाव में एक सूरज
तुम्हारे नाम होता है
क्योंकि मैं सिर्फ इतना चाहती हूँ
कि किसी दिन यह सूरज
तुम्हारे हर अँधेरे को ख़त्म कर दे
और .....
एक नाव तुम बनाओ
लकड़ी की
और उसमें ढेर सारी चाँदनी
ढेर सारी बातें
ढेर सारी चिट्ठियाँ रख दो
मेरे नाम,
एक हल्की मुस्कान के साथ !!!

●

rasprabha@gmail.com

बंटवारा

स्वर्ण ज्योति (पांडिचेरी)

ज़मीं पर बन गई सरहदें
दिलों पर खिंच गई लकीरें
इंसानी जुनून का क्या कहिए
गर चाँद भी हाथ आ जाए
तो कर दिए जायेंगे टुकड़े ।

कैसे ये कठोर जज़्बात
कैसे ये सख़्त हालात
कैसी हैं ये हुकूमतें
हो रहे हैं आघात पर आघात ।

ज़ुबाँ-ज़ुबाँ पर हो गई तकरार
रिश्तों में न रहा करार
एक ही दीवार पर पड़ गई दरार
सपनों का जहाँ हुआ तार-तार ।

चाहे कुछ भी हो
साँस अभी बाकी है
टूट कर भी
विश्वास अभी बाकी है
ज़र्रा-ज़र्रा बँट भी गया तो क्या
अरे नादानों
आसमाँ अभी बाकी है ।

●

swarnajo@gmail.com

कविताएँ

ताँका : डॉ. भावना कुँअर (आस्ट्रेलिया), डॉ0 हरदीप कौर सन्धु (आस्ट्रेलिया)

(ताँका विश्व प्रसिद्ध जापानी छन्द है,जिसमे 5+7+5+7+7=31 वर्ण के क्रम में पाँच पंक्तियाँ होती हैं)

डॉ. भावना कुँअर (आस्ट्रेलिया)

ताँका

1
लगी जो प्रीत
मेरे मन के मीत
भई बावरी
भूल गई जग की
रिवाज और रीत

2
अकेलापन
हमेशा रहा साथ
वो बचपन
अब तक है याद
सौगात सूनापन

3
फूल औ' पत्ते
देख के पतझर
यूँ बेतहाशा
डर के जब दौड़ें
कहलाएँ भगौड़े

4
हमेशा दिया
अपनों ने ही धोखा
मैं भी जी गई
उफ़ बिना किए ही
ये जीवन अनोखा

5
भागती रही
परछाँई के पीछे
जागती रही
उम्मीद के सहारे
अपनी आँखे मींचे

डॉ0 हरदीप कौर सन्धु (आस्ट्रेलिया)

ताँका

1
बीते वो पल
उड़ते छीटों -जैसे
भिगोते रहे
कभी ये तन्हा मन
कभी मेरा दामन

2
जब तू चाहे
साँस लेने के साथ
जीने भी लगे
हो जाता शुरू जीना
जब तू शुरू करे

3
एक दिल में
प्रेम व नफ़रत
यूँ साथ-साथ
बना अपना घर
कभी नहीं बसते

4
खामोश लम्हे
माला में पिरोकर
जब पहने
बनकर गहनें
देने लगे सकून

5
सवेरा होते
जगा देता है मुर्गा
देकर बाँग
बाँग देने से कभी
नहीं होता सवेरा

डॉ. अचला शर्मा का कथा संसार

विजय शर्मा (भारत)

कहानी का परिदृश्य में राजेन्द्र यादव कहते हैं, ''विशिष्ट रचना हमेशा अपने कथ्य और अनुभव क्षेत्र में कुछ नया जोड़ती है ।'' डॉ. अचला शर्मा की कहानियाँ इस अर्थ में विशिष्ट हैं क्योंकि उनका कथ्य तथा अनुभव क्षेत्र हिन्दी कहानी को समृद्ध करता है और उसे एक नई दुनिया से जोड़ता है। उनका रचना संसार बहुत गहन और विस्तृत है। गहन इस अर्थ में कि वे पात्रों के मन की गहराइयों में उतर कर उनके मन में चल रही उथल-पुथल का बहुत गहराई से अध्ययन करती हैं। मानवीय संबंधों के बीच के तनाव को बड़ी शिद्दत के साथ पाठकों तक संप्रेषित करती हैं। संवेदना के साथ अपनी कहानियाँ रचती हैं। विस्तृत इस अर्थ में कि वे एक पेनोरमिक व्यू रचती हैं। उनकी व्यापक दृष्टि मनुष्य मात्र पर है। भौगोलिक रूप से कहानियों का विस्तार भारत और इंग्लैंड के साथ कई अन्य देशों को भी अपने आप में समेटे हुए हैं। वे इंग्लैंड में रहती हैं सो इंग्लैंड तो यहाँ है ही, भारत का उनमें आना स्वाभाविक है। इसके साथ-साथ उनके यहाँ पाकिस्तान, स्कॉटलैंड और जिनेवा भी नज़र आता है। उनकी दुनिया इंग्लैंड प्रवासी की अनुभवजन्य और अनुभूतिप्रसूत दुनिया है। जिनसे गुज़रते हुए हिन्दी का आम पाठक दूर-दराज़ की जीवन शैली से परिचित होता है। उनके यहाँ प्रवासी की निरी भावुकता नहीं है। वे भूमंडलीकरण के दौर के समय और समाज को तटस्थता के साथ प्रस्तुत करती हैं। इंग्लैंड के साथ अपने मूल देश भारत और उसके पड़ोसी देश पाकिस्तान पर उनकी दृष्टि है। वैसे भी जब आप दूर से देखते हैं तो नज़रिया व्यापक और वस्तुनिष्ठ हो जाता है। स्वयं उनका कहना है, ''प्रवास सिर्फ़ नॉस्टेल्जिया का पर्याय नहीं है। प्रवास लेखक को अपने देश के सामाजिक-राजनीतिक बदलावों को देखने और समझने की तटस्थ दृष्टि भी देता है।'' वे मानवीय संबंधों के पार जाकर मानवीय संवेदना का चित्रण करती हैं।

उन्होंने 'रेसिस्ट'* में पाकिस्तान और पाकिस्तानियों को एक देश और मनुष्य के रूप में चित्रित किया है, आतंकवादी के रूप में नहीं। उनके लिए मानवीय मूल्य सर्वोपरि हैं। वे आज के मुद्दों पर कहानी रचती हैं। रेसिस्ट आतंकवाद का क्रूर, कुफ़ल भुगत रहे सामान्य आदमी के भय का चेहरा दिखाने वाली कहानी है। जबकि 'मेहरचंद की दुआ' गैरकानूनी ढ़ंग से प्रवास कर रहे व्यक्ति की ऊहापोह से पाठक को परिचित कराती है। महरेआलम अपनी समस्त जमापूँजी दाँव पर लगा कर बेहतर ज़िन्दगी की तलाश में छः महीने का टूरिस्ट वीज़ा लेकर लंदन आया था। और छः महीने पार होने के बाद गुमनामी की जिन्दगी बिता रहा है। ''अब वह इस मुल्क में है भी, और नहीं भी... बिना वजूद के एक बेनाम जिन्दगी बसर कर रहा है...खौफ़ हमेशा बना रहता है कि किसी ने खबर कर दी तो पकड़ कर वापस भेज देंगे।'' सारी कमाई जेब में जाती है टैक्स नहीं देना पड़ता है। मगर ''इस बात से डरता रहा है कि कहीं बीमार पड़ गया और किसी अस्पताल में जाना पड़ा तो सारी पोल खुल जाएगी...किसी झगड़े में नहीं पड़ता। बस अपने काम से काम रखता है।'' इस पर भी उसे ज़िल्लत का अनुभव होता है, वर्ल्ड सेंटर गिरने के बाद उसके सामने अक्सर मुसलमान कौम और पाकिस्तान को गालियाँ दी जाती हैं। और ''जब लंदन के अन्डरग्राउंड में बम फ़टे थे तो आए दिन कोई न कोई मुसल्मानों की ऐसी तैसी करता था।'' यहाँ तक कि उस पर कटाक्ष करते हुए कहा जाता है, ''मुसलमान अगर हिन्दू का भेस बदल कर आ जाए तब भी उस पर भरोसा नहीं करना चाहिए।'' वह कट कर रह जाता है । खून का घूँट पी कर भी चुप रहता है। वह कहना चाहता है, ''न सारे मुसलमान दहशतगर्द हैं और न ही सारे दहशतगर्द पाकिस्तानी।'' मजबूरी में वह नवीन भाई की दुकान पर मेहरचन्द के नाम से नाई का अपना पुश्तैनी काम कर रहा है। कहानीकार ने प्रवास और उसके अर्न्तद्वंद्व को समझने की कोशिश की है। आम इंसान के लिए दो शाम की रोटी का इंतज़ाम ही उसका दीन ईमान है। ''बाकी सब अल्लाह मियाँ जाने ।''

वातावरण का मतलब है रचनाकर का अनुभव जगत। जिसमें भौतिक परिवेश का प्रमुख हाथ होता है। मौसम, युद्ध-शान्ति, धर्म, आर्थिक दबाव लेखक की सृजनात्मकता को आकार देने वाले कारक होते हैं। वातावरण का प्रभाव तात्कालिक होता है। 'रेसिस्ट' में धर्म और आतंकवाद जैसे तात्कालिक कारक तनाव

की सृष्टि करते हैं। आर्थिक दबाव के कारण महरेआलम/मेहरचंद का सृजन हुआ है और मौसम यही भौतिक परिवेश कहानीकार को 'चौथी ऋतु' जैसी अनोखी कहानी की रचना के लिए प्रेरित करता है।

अपनी प्रिय कहानी 'चौथी ऋतु' में वे आज के व्यस्त जीवन में बुज़ुर्गों की स्थिति का जायज़ा लेती है। यह प्रवासी लेखक द्वारा लिखी जाकर भी प्रवासी कहानी न होकर प्रवासी अनुभवप्रसूत कहानी है। इस कहानी का परिवेश तो विदेशी है ही सारे पात्र, उनकी संवेदनाएँ, सभ्यता-संस्कृति, मूल्य व्यवहार सब विदेशी हैं। जीवन और वृद्धावस्था को देखने का उनका दृष्टिकोण भी विदेशी है। ''जैसे जैसे बुढ़ापे की पदचाप सुनाई पड़ने लगती है, चुनने की आज़ादी खतम होने लगती है। रह जाती है एक संकरी गली - वह भी आगे से बंद।'' सुखी जीवन व्यतीत करने के बावजूद लिंडा, पीटर, रोजमेरी और लॉरेंस आज एकाकी जीवन जीने को अभिशप्त हैं। एक कटु सच्चाई जो आज भारत में भी जड़ जमा रही है। क्रिसमस का त्यौहार है। लंदन में तीस साल में इतनी बर्फ़ पहली बार गिरी है। सब कुछ जम गया है। रिश्ते भी। कहानीकार इस कहानी के संबंध में अपने वक्तव्य में कहती हैं, ''क्रिसमस के महीने को झेलने के लिए ज़रूरी है कि आप जवान और तंदुरुस्त हों, आपका बड़ा सा परिवार हो या बहुत सारे दोस्त हों।'' कहानी के सारे पात्र बूढ़े और एकाकी हैं। कहानीकार का कमाल है कि इस सर्द मौसम में भी वह अजनबियों के बीच रिश्तों की गरमाहट पैदा करती है। मौत के साए को दूर हटा कर जिन्दगी को खुशहाल बनाती है। यह कहानी इस मिथक को खारिज करती है कि प्रवासी कहानियाँ मात्र गृहातुरता का राग हैं। यह दिखाती है कि अचला शर्मा की सजग व्यापक दृष्टि सूक्ष्मता से अवलोकन करती है। देशकाल के पार जाकर अपने कथ्य को प्रस्तुत करती है। इसी कारण वे एक विशिष्ट कहानीकार की श्रेणी में रखे जाने की हकदार हैं। एक संवेदनशील रचनाकार होने के नाते उनके लिए देशकाल से ज़्यादा मायने रखती हैं मानवीय अनुभूतियाँ।

'दिल में कस्बा' पीढ़ियों तथा संस्कृति के द्वन्द्व को प्रदर्शित करती है। 'उस दिन आसमान में कितने रंग थे' * वैवाहिक जीवन की विडम्बना और त्रासदी को चित्रित करती चलती है। उनकी कहानियाँ एक विशाल फ़लक पर मानवीय मूल्यों का साक्षात्कार कराती हैं। उनका कथा परिवेश कहानी समाप्त होने के काफ़ी बाद तक पाठक के साथ रहता है। पाठक पात्रों के साथ विचरण करता रहता है, उनसे संवाद करता रहता है। अचला शर्मा एक इंटरव्यू के दौरान कहती हैं, ''जीवन का कौन सा अनुभव है जो अपना नहीं है। जो मैंने जीया वह तो निज का है ही। जो जीवन कोई दूसरा जीता है, वह भी उस

''लेखक के रूप में हमारा कुछ दायित्व भी है । हम अपने समय और परिवेश की अवहेलना नहीं कर सकते हैं। हमारे आसपास पात्रों का, नई समस्याओं का, नए संघर्षों का और नई सोच का विशाल संसार है। उससे जुड़ाव हमारे रचना संसार को नए आयाम दे सकता है।''

वक्त मेरा, निज का हो जाता है जब मैं लेखक के रूप में उसे जीती हूँ। कहने का मतलब यह है कि हम जिस परिवेश में साँस लेते हैं, जिन लोगों से मिलते हैं या वे जो हमारे जीवन को दूर से अपनी परछाँई से छूकर निकल जाते हैं, वे सभी हमारे निज की जीवन परिधि में आ जाते हैं। इस नाते मैं यही समझती हूँ कि मेरी प्रेरणा का स्त्रोत मेरे आसपास का परिवेश, उसमें जीते, साँस लेते पात्र और उनके साथ मेरा संपर्क रहे हैं।'' लंदन के परिवेश में रह रही कहानीकार का अनुभव व्यापक है। उनके अनुभव क्षेत्र में भारतीय, पाकिस्तानी, अरब, स्कॉटिश, ब्रिटिश सब आते हैं ये उनकी रचना के प्रेरणा स्त्रोत हैं।

पड़ोसी पाकिस्तान से हमारे राजनैतिक रिश्ते चाहे जैसे भी हों साहित्यिक और मानवीय रिश्ते काफ़ी मजबूत रहे हैं। प्रवास में ये रिश्ते और भी ज़्यादा करीब आ जाते हैं। इसीलिए अचला शर्मा की कहानियों में हमें कभी महरे मिलता है। कभी ट्रेन में मुस्लिम युवक दीखता है। इनकी कहानियों में प्रवासी देश के सरोकार दिखाई देते हैं। लंदन का माहौल, स्थितियाँ, सभ्यता-संस्कृति स्वाभाविक रूप से उनकी कहानियों में आती हैं। आज के भूमंडलीकरण और आतंकवाद के दौर का लंदन उनके जीवन की सच्चाई है और वह पूरी शिद्दत से उनकी रचनाओं में आता है। भारत आता है मगर मात्र गृहातुरता, नॉस्टाल्जिया के रूप में नहीं आता है। हाँ गृहातुरता को लेकर 'बेघर' जैसी कहानी भी उन्होंने लिखी है। अंडरग्राउंड रेल में विस्फ़ोट के अगले दिन के सहमे सकुचे माहौल का चित्रण 'रेसिस्ट' इतना स्वाभाविक बन पड़ा है कि पाठक उस तनाव को शिद्दत के साथ अनुभव करता है। स्थिति इतनी भयावह है कि पुलिस किसी को भी पूछताछ के नाम पर उठा कर ले जा सकती है।

कहानियाँ हमें प्रवासी समाज, परिवेश से रू ब रू कराती हैं, प्रवासी जीवन से परिचित कराती हैं। गैरकानूनी तरीके से किसी देश में प्रवेश करने वालों और वहाँ रह रहे लोगों के अहसास बहुत खूबी के साथ बारीकी से बुनती हैं। अहसास बोलते हुए सुने जा सकते हैं। 'मेहर चंद की दुआ' का पहला अनुच्छेद उसके दोनों नामों के साथ उसकी दिक़्क़त, पहचान के संकट, देश, धर्म, भाषा बोली से पाठक को परिचित करा देता है। एशिया के लोग मेहनती हैं। खासकर भारत और पाकिस्तान के लोग। पर हालात ऐसे हैं कि अपने देश में मेहनत करके भी जीवन की भौतिक खुशहाली प्राप्त नहीं की जा सकती है। आज का प्रवासी अपना देश छोड़कर बेहतर जीवन की तलाश में इंग्लैंड जाता है। वहाँ मेहनत से अच्छी आमदनी हो सकती है। होती है। मेहर बाल काट कर भी इस स्थिति में है कि स्वास्थ्य बनाने के लिए जिम जा सकता है। फ़्लैट में रह सकता है। अपनी बीवी को हर महीने बच्चों की परवरिश के लिए अच्छी खासी रकम अपने मूल देश भेज सकता है।

गर्भनाल ४८ में अपने साक्षात्कार में वे कहती

हैं, ''एहसास तो वही होते हैं जो लेखक में अपने अनुभवों, सामाजिक सरोकारों और बदलावों से पैदा होते हैं। बस ये एहसास अलग अलग विधाओं में पानी की तरह ढल कर अलग अलग शक्ल अख्तियार कर लेते हैं। अपने आसपास के समाज और पात्रों को समझने और उन्हें उनके परिवेश में, उनकी परिस्थितियों में रखकर उनकी तमाम खूबियों और खामियों के साथ, उनके साथ न्याय कर पाना, हर लेखक के लिए पहली और आखिरी अनिवार्यता है।'' इस पहली और आखिरी अनिवार्यता पर वे खरी उतरती हैं।

अचला शर्मा अपने रेडियो नाटकों के लिए अधिक जानी जाती हैं। सुधीश पचौरी उनके नाटकों पर लिखते हुए कहते है, ''एक खुला खुला ग्लोबल नज़रिया, एक सख़्त क़िस्म की मानवीयता, गहन संवेदनशीलता, जीवन के मार्मिक प्रसंगों की गहरी पहचान, बदलते समय की अनंत जटिलताओं के भीतर प्रवेश कर उनकी परतों को खोलना, प्रवास, प्रवासी अस्तित्व और जीवंत जगत के मानवीय दानवीय मूल्यों को पहल दर पहल खोलते जाने वाली अचला को इन नाटकों के जरिए इस लेखक ने एक बार फ़िर जाना है।'' मगर यही खुला खुला ग्लोबल नज़रिया, एक सख्त किस्म की मानवीयता, गहन संवेदनशीलता, जीवन के मार्मिक प्रसंगों की गहरी पहचान, बदलते समय की अंनत जटिलताओं के भीतर प्रवेश कर उनकी परतें खोलना, प्रवास, प्रवासी अस्तित्व और जीवंत जगत के मानवीय दानवीय मूल्यों को परत दर परत खोलते जाना उनकी कहानियों की भी विशेषता है।

वे अपनी रचना प्रक्रिया के संदर्भ में कहती हैं, ''प्रवासी के इस जटिल संसार के अलावा मेरी नज़र बदलते भारत पर भी रही है। प्रवास ने भारत को ग्लोबल परिप्रेक्ष्य में देखने और जानने की समझ दी।'' इसीलिए ''बेघर'' में वे लिख सकी हैं, ''तनख्वाहें बढ़ गई हैं तो महँगाई भी बढ़ गई है। स्कूटरों की जगह कारों की तादाद बढ़ गई है तो सड़कों पर ट्रैफ़िक भी बढ़ गया है; एक्सीडेण्ट बढ़ गए हैं। टेलीविजन पर आने वाले रंगीन विज्ञापनों ने लोगों की इच्छाओं और विकल्पों को बढ़ाया है तो भ्रष्टाचार और अपराध भी बढ़ गए हैं।'' अचला शर्मा कहती हैं, ''हम जैसे लोग, जहाँ बसते हैं, वहाँ एक ग्लोबल व्यवस्था, वैश्विक सोच और बहु सांस्कृतिक समाज के दरवाजे हमारे लिए खुले हैं। यह हमारी ताकत है।'' बीबीसी के हिन्दी विभाग की पूर्व अध्यक्ष, 'जड़ें' तथा 'पासपोर्ट' रेडियो नाटक, 'बरदाश्त बाहर', 'सूखा हुआ समुद्र, 'मध्यांतर' कहानी संग्रहों की रचनाकार अचला शर्मा को विश्व हिन्दी सम्मेलन सूरीनाम में विश्व हिन्दी सेवा के लिए सम्मानित किया गया है। साथ ही उन्हें यूके का पद्मानन्द साहित्य सम्मान भी प्राप्त हुआ है। बीबीसी के पहले उन्होंने ऑल इंडिया रेडियो में पाँच साल काम किया, वॉयस ऑफ़ अमेरिका में भी उनका डेढ़ साल का अनुभव है। बीबीसी से वे दो दशक से अधिक समय जुड़ी रहीं। लंदन का बहु सांस्कृतिक समाज उनके लेखन की ताकत है। इसी ताकत के बल पर उन्होंने 'चौथी ऋतु', 'रेसिस्ट', 'मेहरचन्द की दुआ', 'उस दिन आसमान में कितने रंग थे' और 'दिल में इक कस्बा' जैसी कहानियों की निर्मिति की है।

उनके अनुसार, ''लेखक के रूप में हमारा कुछ दायित्व भी है । हम अपने समय और परिवेश की अवहेलना नहीं कर सकते हैं। हमारे आसपास पात्रों का, नई समस्याओं का, नए संघर्षों का और नई सोच का विशाल संसार है। उससे जुड़ाव हमारे रचना संसार को नए आयाम दे सकता है।'' इसी दायित्व को निभाते हुए उन्होंने रेसिस्ट जैसी कहानी लिखी। इसीलिए वे गैर क़ानूनी तरीके से लंदन में रह रहे महरेआलम के दर्द को समझ सकीं हैं। नई सोच के तहत महरेआलम और नैन को एक छत के नीचे ला सकीं। दो जरूरतमन्द लोग कैसे मिलकर अपनी समस्याओं का हल खोज सकते हैं। कैसे एक दूसरे का सहारा बन सकते हैं। यह समझने के लिए यह कहानी पढ़नी होगी।

मात्र दो पात्रों की सहायता से अचला शर्मा ने कहानी 'दिल में इक कस्बा' रची है। माँ प्रभा बनर्जी तथा बेटी नेहा। कहानी माँ के अंतरद्वन्द्व को लेकर आगे बढ़ती है। प्रभा शादी के बाद से समायोजन करती आ रही है। जीवन की

विजय शर्मा
१५१ न्यू बाराद्वारी, जमशेदपुर ८३१ ००१
मोबाइल: ०९४३०३८१७१८
फ़ोन: ०६५७-२४३६२५१
ईमेल: vijshain@yahoo.com

खुशहाली, सुख शान्ति के लिए समायोजन अत्यावश्यक है। मगर किस कीमत पर? इस पर बाद में। प्रभा ने यू पी की होते हुए एक बंगाली ब्राह्मण शोमेन से प्रेम विवाह किया और अब वे लोग लंदन में रह रहे हैं। शोमेन अच्छे पद पर, शान्त स्वभाव के व्यक्ति हैं। अक्सर देश-विदेश के दौरे पर रहते हैं। बेटी नेहा प्रवास में जन्मी है। प्रभा की कोशिश रही है कि बेटी को वहीं के माहौल के अनुसार पाला-पोसा जाए। इसके लिए वह स्वयं को बदलने का प्रयास करती है। बेटी को किसी तरह की हीन भावना का अनुभव न हो इसलिए प्रभा कार चलाना सीखती है जिससे उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। बेटी को प्राइवेट स्कूल भेजती है हालाँकि इस खर्च के लिए उसे अपने अन्य मदों में कुछ कटौती करनी पड़ती है। बेटी पढ़ने में अच्छी है और एक एक क्लास फ़लाँगती हुई कॉलेज पहुँच जाती है। यहाँ तक तो सब ठीकठाक है। मगर बेटी की युवा होते ही प्रभा के मन में तमाम शंकाएँ सिर उठाने लगती हैं। उसके भारतीय संस्कार उसे चैन से नहीं बैठने देते हैं। वह बेटी को लेकर चिन्तित रहने लगती है। पहले उसे भय है कहीं नेहा लड़कों के साथ न रहने लगे। बाद में जब काफ़ी दिन बीत जाते हैं और कोई ऐसी

> ''प्रवासी के इस जटिल संसार के अलावा मेरी नजर बदलते भारत पर भी रही है। प्रवास ने भारत को ग्लोबल परिप्रेक्ष्य में देखने और जानने की समझ दी।''

सुनगुन नेहा की ओर से नहीं होती है। नेहा कॉलेज समाप्त कर एक अच्छे पद पर काम करने लगती है। तब उसे चिन्ता होने लगती है कहीं नेहा समलैंगिक तो नहीं है। वह मन कड़ा करके, अपने संकोच को दबा कर, एक दिन बेटी से पूछ ही लेती है और यह जानकर उसे बहुत राहत मिलती है कि ऐसा कुछ नहीं है। मगर प्रभा के भारतीय संस्कारी मन को अभी भी चैन नहीं है।

बेटी तुनकमिजाज है। अब वह बालिग है। अत: प्रभा उससे कुछ भी पूछने से पहले हजार बार सोचती है। तौलती है। उसे डर है कि यदि उसकी किसी बात से नेहा गुस्सा हो गई और उसने उन लोगों से नाता तोड़ लिया तो वह उसके बिना कैसे रहेगी। मगर अपने दिल का क्या करे? बेटी तीस पार कर गई है। उसके लिए कैरियर प्रमुख है। नेहा के लिए सैटल होने का अर्थ कैरियर है जबकि प्रभा की दृष्टि में लड़की के सैटल होना का मतलब उसकी शादी है और नेहा इस बारे में बात करने को राजी नहीं है। हाँ वह माँ को बता चुकी है कि वह लड़कों के साथ रहती सोती है। प्रभा के भीतर बैठी भारतीय माँ इस कडुवे सच को भी किसी तरह पचा लेती है। मगर उसे चैन नहीं है। और प्रभा इस हद तक समझौता करने को तैयार हो जाती है कि यदि नेहा को कोई गोरा या काला लड़का भा जाए तो वह उसे भी दामाद के रूप में स्वीकार कर लेगी। मगर नेहा की जीवन पद्धति उसकी समझ के बाहर है।

पिता शोमेन पत्नी-बेटी के जीवन में बहुत दखल नहीं देते हैं। वे अक्सर बेटी का पक्ष लेते हैं। प्रभा को सलाह देते हैं, ''छेड़े दाओ ओके'' लेकिन एक समय आता है जब उनका धैर्य चुक जाता है। नेहा काफ़ी दिनों से एक स्कॉटिश लड़के मार्टिन के साथ रह रही है और अब गर्भवती भी है। शोमेन कह उठते हैं, ''प्रोश्नो ई ओठे ना।'' ''साथ रहना है तो शादी करने में क्या समस्या है। कह दो उसे, मुझे यह लिविंग टुगैदर का कल्चर बिल्कुल पसंद नहीं है।'' असल में उन्हें चिन्ता है कि यदि ''इंडिया में किसी घर वाले को पता चल गया तो क्या जवाब देंगे।'' नेहा का कहना है, ''यहाँ के इंडियन लड़कों के साथ बड़ी समस्या है माँ, ख़ुद तो इस सदी में रहना चाहते हैं और बीवी को पिछली सदी में रखना चाहते हैं।'' उसे डर है कि कहीं उसके माता पिता उसके लिए भारत से लड़का इम्पोर्ट न कर लें। यह भी प्रवास का एक चलन है। भारत के लड़के भी विदेश में बसने के लिए ऐसे मौकों की तलाश में रहते हैं।

नेहा जिन्दगी अपनी पसन्द से जीती है। लेकिन कहानी के अन्त में सारा दोष माँ पर डाल देती है, ''माँ, आपकी स्मॉलटाउन मेंटिलिटी की वजह से मार्टिन क्या, कोई लड़का मेरी जिन्दगी में नहीं टिकेगा।'' इससे नेहा के स्वभाव का पता चलता है। मतलब पर माँ को याद करती है। और तो और माँ को जब तब इमोशनल ब्लैकमेल भी करती है। कभी गले में बाँहें डाल कर अपनी बात मनवाती है, कभी पैर पटकती हुई घर से निकल जाती है। कभी उससे मनपसंद खाने की फ़रमाइश करती है।

अचला शर्मा शब्दों और शब्दचित्रों के माध्यम से समय और वातावरण तथा रिश्तों के तनाव का चित्रण बखूबी करती हैं। 'रेसिस्ट' में ट्रेन के डिब्बे में धीरे-धीरे जो तनाव उत्पन्न होता है। वह पुलिस वालों की उपस्थिति से और भी सघन हो जाता है। पिछले दिन लंदन के अन्डरग्राउण्ड रेलवे में पाकिस्तान के आतंकवादियों ने बम विस्फ़ोट किया है। आज सारे अखबार, टीवी उसी हादसे के खबरों और चित्रों से भरे हुए हैं। मगर कोई कुछ नहीं बोल रहा है। वैसे भी ब्रिटेन के लोग चुप रहते हैं मगर आज की चुप्पी तनाव के कारण है स्वाभावगत विशेषता के कारण नहीं। लोग जबरदस्ती अखबार में सिर घुसाए हुए हैं। ''आज की खामोशी में कल की दहशत घुल गई है।'' सबके मन में भय है, ''जो कल हुआ वह आज भी हो सकता है।'' और तभी उसकी दृष्टि एक लड़की पर पड़ती है, ''लड़की सर पर स्कार्फ़ बाँधे है। मुसलमान है, यह निश्चित है। मगर कहाँ की है यह कहना मुश्किल है।'' अंग्रेज़ को रेसिस्ट कहना समझना आसान है पर क्या हम भी उसी मानसिकता से ग्रस्त नहीं हैं?

लड़की की सीट के पास एक लड़का खड़ा है। ''चेहरे पर हल्की सी दाढ़ी है. पाकिस्तानी हो सकता है, या फ़िर अरब।'' मगर लड़के का चेहरा जाना पहचाना लग रहा है। लड़का भी उससे यही बात कहता है। मगर आज किसी मुसलमान को पहचानना ख़तरे को बुलावा देना हो सकता है।

तनाव तब और बढ़ जाता है जब गाड़ी काफ़ी देर के लिए रुक जाती है। तरह तरह की आशंकाएँ घेरने लगती हैं। ''कहीं इस डिब्बे में कोई बम तो नहीं। इन यात्रियों में कोई टेररिस्ट तो नहीं बैठा...उसने झुकी नज़र से बाकी यात्रियों के बैगों का मुआयना शुरु कर दिया, कौन सा मोटा है, कौन सा बैक पैक, कहीं कोई अपना सामान गाड़ी में छोड़ कर उतर तो नहीं गया...'' पुलिस की उपस्थिति से वातावरण और तनावपूर्ण हो जाता है। तब माहौल और भी दहशतभरा हो जाता है जब दो पुलिस वाले इसी डिब्बे में सवार हो जाते हैं। इतना ही नहीं, ''दोनों पुलिस वाले, जो अब तक दरवाजे के पास खड़े थे, डिब्बे में चक्कर लगाने लगे हैं।'' गाड़ी चलने पर लोग राहत की सांस लेते हैं। मगर अगली बार गाड़ी सुरंग में रुक जाती है।

इस समय तक कथावाचिका ने उस दाढ़ी वाले लड़के को गैरकानूनी काम में लिप्त सोच लिया है। ''क्या मालूम क्या एजेंडा है इसका।'' और पुलिस वाले भी उसी लड़के के पीछे पड़ते हैं। स्थिति इतनी असह्य हो जाती है कि वह सोचती है, ''बस पकड़ लेगी मगर इस तनाव को और नहीं झेलेगी।'' तनाव का ऐसा चित्रण प्रवासी हिन्दी कहानी में बेजोड़ है।

पुलिस उस दाढ़ी वाले युवक को पूछताछ के लिए ले कर उतर जाती है। कथावाचिका को याद आ जाता है कि स्पोकन इंग्लिश के कोर्स में सबसे कम उम्र का छात्र यही तो था। मगर

जब पुलिस उससे पूछती है कि क्या वह लड़के को जानती है तो वह साफ़ इन्कार कर देती है । जबकि उसे उसका नाम भी याद आ जाता है। उसे अजीब लगता है कि उससे लड़के के बारे में क्यों पूछा जा रहा है। वह साफ़ मुकरते हुए कहती है कि मैंने इसे अपनी ज़िन्दगी में पहले कभी नहीं देखा है। ''उसने चीखती सी आवाज़ में अपनी आपत्ति जताई ताकि हर यात्री तक उसकी आवाज़ पहुँच जाए।''

उसे मन में सकून है कि उससे ज़्यादा बात नहीं की। हर बार पहले से तेज़ आवाज़ में वह नटती है। कहती है, ''आई डू नॉट नो हिम।'' ''नहीं ऑफ़ीसर मैं उसे बिल्कुल नहीं जानती, ज़िन्दगी में इससे पहले कभी मिली भी नहीं।'' कितनी आसानी से कह दिया उसने।

इस कहानी के अन्त और जीसेस के लास्ट सपर में काफ़ी समानता है। लास्ट सपर के समय पीटर जीसेस के लिए कुछ भी करने के लिए यहाँ तक कि जान भी देने का दाव कर रह है। मगर जीसेस स्पष्ट कह देते हैं कि सुबह मुर्गे के बोलने के पहले पीटर जीसेस को पहचानने से तीन बार इन्कार कर चुका होगा। और यही होता है तीन बार पीटर से पूछा जाता है क्या वह जीसेस को जानता है। और हर बार पहले से ज़्यादा जोर से वह कहता है कि वह जीसेस को नहीं जानता है। वक्त पड़ने पर हम कितने स्वार्थी हो जाते हैं। यह प्रवासी ही नहीं हर आम आदमी का यथार्थ है। मगर कहानी में इस यथार्थ का सामना करके वह निरपेक्ष नहीं है। उसे अपनी घिनौनी सच्चाई दीख जाती है। जो बदबू पहले केवल एक स्त्री से आ रही है और वह स्त्री अब डिब्बे में नहीं है फ़िर भी बदबू पूरे डिब्बे में फ़ैल चुकी है। अचला शर्मा की कहानियाँ हमारी सारी इन्द्रियों को सम्बोधित करती हैं। इन कहानियों में चाक्षुक संवेदना के साथ-साथ घ्राण, स्पर्श और श्रवण संवेदना भी परिलक्षित होती है।

इसमें नए-नए प्रवासी की मानसिकता और धीरे-धीरे उसका नए परिवेश में समाहित होते जाना और अपने को कुछ विशिष्ट समझने लगने का बड़ा सटीक वर्णन है। शुरू में होमसिकनेस के कारण उसे देशवासी का संग-साथ सकून देता है। फ़िर साल भर में वह खुद को उनसे दूर करने लगता है। उसे उनकी उपस्थिति से शर्मिन्दगी अनुभव होने लगती है। उनकी गंध तक उसे असह्य होने लगती है। देश से आए लोगों का इंग्लिश का अज्ञान उसमें खीज उत्पन्न करता है। भारतीयों की खासी संख्या लंदन में है। डिब्बे में भी तीन चौथाई एशियन हैं। मगर उसे अन्य देश के लोगों का थोक के भाव आना और लंदन में बसना नहीं जँचता है। ''उसे यह बात बहुत बुरी लगती है कि कोई उसे गुजराती समझ ले। कोई मज़ाक है? उसे यह बात उतनी ही बुरी लगती है जितनी की यह कि कोई उसे पाकिस्तानी समझ ले।'' वह अपनी पोशाक भी बदल लेता है। एक समय ऐसा आता है जब वह अपने स्वार्थ, खुद को खतरों से बचाए रखने के लिए अपने जैसों को पहचानने से भी इंकार कर देता है। उनकी उपस्थिति उसमें तनाव उत्पन्न करती है।

''लेखक, समाज और पाठक का संबंध जितना सहज और स्वाभाविक है, उतना ही जटिल भी। लेखक, समाज और पाठक एक त्रिकोण के तीन बिन्दु हैं एक दूसरे से जुड़े हुए और विलग भी। लेखक समाज की उपज है और पाठक भी। और इन दोनों से मिलकर समाज बनता है।''

तनाव 'दिल में इस कस्बा' में भी है। मगर यह आतंकवाद, पुलिस, सत्ता का तनाव नहीं है। यह आपसी, पारिवारिक संबंधों का तनाव है। प्रभा और नेहा के संबंध कभी भी नॉर्मल नहीं हैं। प्रभा को बोलते समय सदैव ध्यान रखना पड़ता है कि कहीं वह बेटी को खो न दे। बेटी भी माँ की प्रश्न पूछने, उसकी निजी ज़िन्दगी में झाँकने की आदत से तनाव में रहती है। बात-बात में चाहे वह प्रभा का घर हो अथवा नेहा का फ़्लैट वातावरण तनावपूर्ण हो उठता है। हर बार हार कर प्रभा चुप हो जाती है। दोनों के बीच कुछ दिन के लिए संवाद का पुल बंद हो जाता है। यहाँ आर्थिक दबाव नहीं है। दो पीढ़ियों की सोच, दो संस्कृतियों का द्वन्द्व तनाव उत्पन्न करता है। संस्कृतियों की टकराहट और जेनेरेशन गैप के कारण तनाव है। संस्कृतियों का सम्मिश्रण होता है। विवेकशील प्रवासी मूल देश और प्रवास की सांस्कृतिक टकराहट से नहीं बच सकता है। न ही प्रवास की संस्कृति से अछूता रह सकता है। विवेकपूर्ण प्रवासी दोनों संस्कृतियों से विशेषताएँ ग्रहण करता है। दोनों की कमियों से दूर रहने का प्रयास करता है। प्रभा ने दोनों संस्कृतियों की सकारात्मक बातें अपना ली हैं, वह एक विवेकशील परन्तु भावुक स्त्री है। उसकी समस्या है कि उसने बेटी को अपने जीवन की धूरी बना लिया है। उसका अपना निजी जीवन है ही नहीं। बेटी को प्रेम करना ठीक है मगर पैंतीस साल की लड़की के लिए अपनी ज़िन्दगी लगा देना अपने जीवन के साथ अन्याय है। उसके तनाव का एक कारण यह भी है।

तनाव का निर्माण कहानीकार 'उस दिन आसमान में कितने रंग थे' में भी करती हैं। यह परिस्थितियों की माँग है कि अभिनव शारीरिक तनाव उत्पन्न करे। मगर क्या सोच-समझ कर तनाव उत्पन्न करना इतना सरल है? कहानी की शुरुआत में अभिनव अस्पताल के कमरे में अकेला है। उसे शारीरिक तनाव की आवश्यकता है मगर वह मानसिक तनाव में है। उसे डॉक्टर के निर्देशानुसार काम करना है। क्या जज़्बात ऐसे किसी के आदेश पर चलते हैं? कमरे में पुरुष को उत्तेजित करने की बहुत सारी सामग्री जैसे नंगी औरतों की तस्वीरों वाली पत्रिकाएँ, डीवीडी पर उत्तेजक फ़िल्में आदि उपलब्ध हैं। मानसिक तनाव अभिनव को अपने बीते दिनों में ले जाता है। वह अपनी पत्नी को बहुत प्यार करता है पर अपने पहले प्रेम शाजिया को नहीं भूल पाया है। इसको लेकर उसके मन में कहीं कोई अपराधबोध नहीं है है तो केवल एक कसक। जब शाजिया उससे अलग हुई थी, उस दिन की स्मृति उसे सदा सालती रहती है। दस

साल हो गए हैं अभिनव और रूपाली की शादी को। और अभी तक वे बेऔलाद हैं। बच्चे की उम्मीद लगाए रूपाली और उसके संबंधों में तनाव आ चुका है। अब हालात ये हैं कि, ''एक लंबे अरसे से रूपाली की माँ बनने की ख़्वाहिश, उसकी हताशा, उसका तनाव-सब के सब बिस्तर में आकर उनके बीच लेट जाते हैं।'' इस कहानी में वे जीवन के मार्मिक प्रसंगों को उठाती हैं।

अभिनव और रूपाली के वैवाहिक जीवन में आवेग और उत्तेजना समाप्त हो चुकी है। अब जब वे आई वी एफ़ के इलाज की शरण में आए हैं तब भी कम तनाव नहीं है। ''अभिनव ने कहीं पढ़ा था कि आई वी एफ़ के इलाज के दौरान तनाव इतना बढ़ जाता है कि कुछ दम्पति नज़दीक आने के बजाए एक दूसरे से दूर चले जाते हैं, संबंध टूटने के कगार पर आ जाते हैं।'' लेकिन अभी उनके संबंध इतने नहीं बिगड़े हैं। पत्नी के प्रेम के साथ ''उससे सट गई, कुछ ऐसी नर्मी और गर्माहट के साथ कि उस वक्त अभिनव को अपनी जाँघों के बीच तनाव महसूस होने लगा।''

जब शाजिया मेरी स्टॉप क्लीनिक में थी तब भी अभिनव के तनाव को पाठक अनुभव कर सकता है। ''जितनी देर शाजिया अंदर रही वह घबराया हुआ सा छोटे से वेटिंग रूम में चक्कर लगाता रहा। पसीने की वजह से उसका मेक अप बहने लगा था पर इस वक्त उसे पकड़े जाने की भी फ़िक्र नहीं थी। फ़िक्र थी तो शाजिया की। कहीं कुछ गड़बड़ न हो जाए।''

इन कहानियों की संवेदनाएँ, प्रतिक्रियाएँ और व्यवहार पाठक को तादात्म का धरातल देती हैं। वे कहती भी हैं, ''लेखक, समाज और पाठक का संबंध जितना सहज और स्वाभाविक है, उतना ही जटिल भी। लेखक, समाज और पाठक एक त्रिकोण के तीन बिन्दु हैं एक दूसरे से जुड़े हुए और विलग भी। लेखक समाज की उपज है और पाठक भी। और इन दोनों से मिलकर समाज बनता है। लेखक अपनी कविता कहानियों, उपन्यासों और नाटकों के लिए इसी समाज से अनुभव ग्रहण करता है, पात्रों और घटनाओं से प्रेरित होता है और उनकी कहानी अपने शब्दों में उन्हीं के सामने पेश करता है।'' सच में ये कहानियाँ हमारी अपनी कहानियाँ हैं। हमारे समय की कहानियाँ हैं। उन्होंने अपने परिवेश से अनुभव ग्रहण किए हैं वहीं से पात्र और घटनाएँ ली हैं और पाठकों के समक्ष उसी की कहानी को अपने शब्दों में सजा कर प्रस्तुत कर दिया है।

जीवाश्म के खोल में जैसे जीव की संपूर्ण छाप होती है वैसे ही रचना पर रचनाकार की छाप होती है। खोल के भीतर जैसे जीव था वैसे ही साहित्य के पीछे व्यक्ति होता है। रचनाकार पर जिन कारकों का प्रभाव है उनको जाने बिना रचना को नहीं जाना-समझा जा सकता है। साहित्य केवल मात्र कल्पना नहीं है। नस्ल, संस्कृति और इतिहास ये प्रमुख कारक हैं। यही कारक अचला शर्मा की हिन्दी प्रवासी कहानियों में प्रभा को नेहा की जीवन पद्धति गले नहीं उतारने देते हैं। बंगाली पति शान्त स्वभाव का है। पत्नी के कामकाज में ज़्यादा दखल नहीं देता है। पाकी कह कर सम्बोधित करने वाले उसे रेसिस्ट लगते हैं। मुसीबत में पड़े एक मुस्लिम युवक को पहचानने से इन्कार करने का कारण भी यही कारक हैं। माँ बन कर जीवन की सार्थकता मानना भी इसी का हिस्सा है। नवीन भाई की बदौलत महरेआलम की नौकरी है और वे महरेआलम से बड़ी मुहब्बत करते हैं। भारत के फ़रीद भाई महरे की सहायता करते हैं। महरेआलम नंदनी को अपना फ़्लैट शेयर करने देता है और नैन के हाथ के जायके के कारण वह कई कई दिन तक गोश्त नहीं खाता है। नैन का लिहाज करके घर पर गोश्त नहीं बनाता है, बाज़ार में जाकर खा लेता है।

छोटे-छोटे सुख ज़िंदगी को मुकम्मल बनाते हैं। संवेदना की पराकाष्ठा है, ''जिन्दगी में पहली बार उसने किसी औरत को ऐसे गले लगाया था। लाहौर में अपनी बीवी के साथ रिश्ता सिर्फ़ बिस्तर का था जिसका नतीजा था वो चार बच्चे। औरत को सिर्फ़ गले लगाकर भी कितना सकून मिल सकता है, यह महरेआलम ने पहली बार जाना।'' इसीलिए सब भूल कर ''उसने बस लेटे लेटे दुआ में हाथ उठाए - 'अल्लाह मियाँ, लिब्रल डेमोक्रेट जीतें या हारें, सरकार में आएँ चाहे न आएँ, मुझे लीगल स्टेटस मिले या न मिले, मैं तेरे रहमोकरम से जैसा हूँ बहुत खुश हूँ। ऐ मेरे अल्लाह, मुझ गुनहगार बंदे पर यह करम फ़रमाता रह। आमीन सुम्मा आमीन!'' स्त्री-पुरुष संबंधों पर इतनी संवेदनशील कहानियाँ कम ही पढ़ने को मिलती हैं। दानवीय समय के बरअक्स ऐसी मानवीय कहानी समाज को एक नई सकारात्मक दृष्टि से परिचित कराती है। यह कहानी पाठक को एक सक्रिय भागीदारी के लिए आमंत्रित करती है।

अचला शर्मा अपनी कहानियों में इंग्लिश के अलावा विभिन्न भारतीय भाषाओं की छौंक यथास्थान लगाती चलती हैं। कहीं गुजराती, कहीं बांग्ला तो कहीं उर्दू की खुशबू उनकी कहानियों से आती है। अपनी कहानियों में वे जगह-जगह सूत्र वाक्य भी टाँकती चलती हैं, जैसे ''मुनाफ़ा तो उसी काम में है जो काम आता हो।'' ''औरत को सिर्फ़ गले लगाकर भी कितना सकून मिल सकता है।'' (मेहरचन्द की दुआ), ''लंदन की अंडरग्राउंड गाड़ियों में बोलने का रिवाज है भी नहीं।'' (रेसिस्ट),

एक साक्षात्कार में अचला शर्मा कहती हैं, ''एक बात का श्रेय मेरे रेडियो के अनुभव को निश्चित रूप से जाता है कि नाटक हो या कहानी, अथवा आलोचनात्मक टिप्पणी, मेरे वाक्य छोटे होते हैं और भाषा सहज।'' सहज सरल भाषा में अपनी बात कहनी अचला शर्मा को आती है। यह कार्य आसान नहीं है। वे बहुस्तरीय यथार्थ को सहज सरल शब्दों में चित्रित करने में सक्षम हैं जैसा कि उनकी कहानी 'रेसिस्ट' में हुआ है।

अक्सर लोग लिखने की शुरुआत कविताओं से करते हैं मगर अचला शर्मा कहती हैं, ''लिखने की शुरुआत मैंने कहानी लेखन से की थी और अब फ़िर से कहानियाँ लिख रही हूँ।'' अचला शर्मा का कहानियों की ओर लौटना हिन्दी कथा साहित्य के लिए शुभ है। वे एक विशिष्ट भावभूमि से पाठकों को परिचित कराती हैं।

०००

*कई कहानियाँ अचला शर्मा के सौजन्य से पाण्डुलिपि के रूप में प्राप्त हुई हैं क्योंकि अब संग्रह की प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हैं।

पुस्तक समीक्षा

वेअर डू आई बिलांग (उपन्यास : अर्चना पैन्यूली)

समीक्षा : विजया सती (बुदापैश्त)

घटनापूर्ण और पात्र-बहुल उपन्यास

भारत की मिट्टी में पले-बढ़े किसी भी संवेदनशील रचनाकार के मानस-पटल पर लंबे विदेश प्रवास में अपने देश की स्मृतियों और विदेश की परिस्थितियों के मिले-जुले चित्रों का बनना बहुत स्वाभाविक है । अर्चना पैन्यूली लंबे समय से डेनमार्क में रहती हैं। इनका नया उपन्यास 'वेअर डू आई बिलांग' पहले अपने देश और फिर विदेश में बीते जीवन से उपलब्ध विविधतापूर्ण अनुभवों और बहुरंगी क्षणों का विचारपूर्ण आलेख है । यह एक घटनापूर्ण और पात्र-बहुल उपन्यास है । पात्रों में अधिकांश का सम्बन्ध एक परिवार से है । यह है - गोविन्द प्रकाश शांडिल्य और उनकी पत्नी कमला का परिवार । परिवार के मुखिया श्री शांडिल्य तीस वर्ष पहले पैसा कमाने के इरादे से विदेश आए और आज वे आर्थिक तौर पर सफल एक व्यावहारिक व्यक्ति हैं । पहले उन्होंने अपना देश छोड़ा, फिर नागरिकता छोड़ी । पर जो चीज़ ताउम्र न छोड़ी, वह थी - अपनी देशी संस्कृति व परम्पराएँ । यहाँ रहते हुए भी उन्हें इस देश की उस संस्कृति से दहशत होती है, जो अत्यधिक स्वच्छंद है । अब उनके जीवन में खर्च करने को पैसा और मनोरंजन की फुर्सत है, पर उनका दु:ख यह है कि इस देश में उन्होंने कमाया ज़रूर पर काफ़ी कुछ गंवाया भी है ।

परिवार में उनके दो पुत्र सुभाष और सुरेश और एक पुत्री सुधा है । बड़ा पुत्र सुभाष अपने अपेक्षाकृत व्यवस्थित जीवन में मौन बना रहता है, पर दूसरा छोटा पुत्र सुरेश बहुत मुखर है और उसके जीवन के उतार-चढ़ाव कथा का महत्वपूर्ण अंश हैं । वह अपने जीवन का आरम्भ तो विदेशी ढर्रे से करता है, प्रेमिका लिंडा के साथ लिव-इन-रिलेशनशिप में, किन्तु विवाह

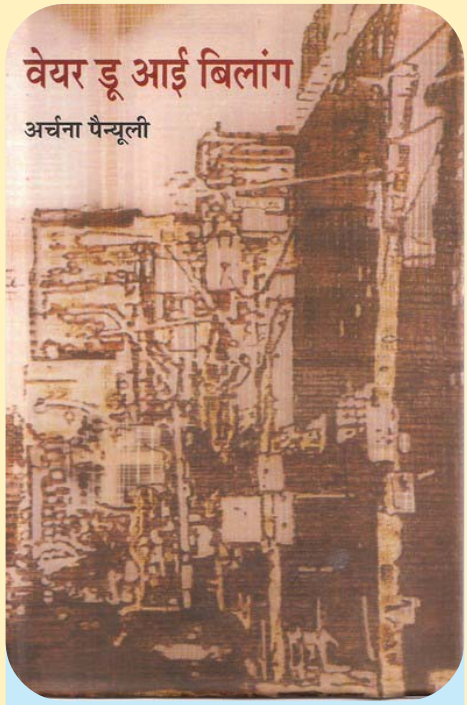

उपन्यास : वेअर डू आई बिलांग, अर्चना पैन्यूली, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, २०१०, पृष्ठ : ३९१, मूल्य : ३९०

की टूटन में निरी भारतीय सोच के साथ दिखाई देता है - 'मैं शादी की पवित्रता पर विश्वास करता हूँ'- जैसे कथन इसका प्रमाण हैं । किन्तु अंतत: भारत में घिसटते दाम्पत्य की तुलना में डेनमार्क में लिंडा का दृढ़ निश्चय इस विवाह में अपने फैसले का आदर चाहता है - और वह है तलाक । इस दुखद घटना ने किस तरह सुरेश के जीवन को एक अंधे कुँए की ओर धकेल दिया, यह उपन्यास का प्रभावी अंश है । सुरेश के जीवन का अंत एक मानवीय समस्या है, जो देश विदेश कहीं भी घटित हो सकती है । उपन्यास के प्रमुख घटना-प्रसंगों में हम पाते हैं - लिंडा-सुरेश-कुसुम के जीवन की कहानी, हरी-रीना-राधेश और मार्टिन-कथा, मार्था और रीना की गहरी मित्रता के सूत्र, रीना-हिमाद्रि-इशिता के तनाव-टकराव की कहानी, स्टेफेनी-सुधा-स्मिता का पारस्परिक मैत्री भाव । नेपथ्य में भट्ट-परिवार के अतिरिक्त डॉ. और श्रीमती देव भी हैं। विदेशी पात्रों में लिंडा और स्टेफेनी दोनों ही अपनी सभ्यता-संस्कृति का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती हैं ।

अपने सक्रिय पति निर्मल शर्मा के साथ शांडिल्य-दंपत्ति की पुत्री सुधा का परिवार उपन्यास के केन्द्र में है, विशेषत: उनकी पुत्री रीना जो परम्परागत अर्थ में भी उपन्यास की प्रमुख पात्र कही जा सकती है । दो भारतीय युवक हरी और राधेश भी कथा के ताने-बाने में बारीकी से गुंथे हुए हैं, वे दोनों ही रीना की निकटता प्राप्त करते हैं और उससे दूर होते हैं । मार्टिन का कोई अधिक ज़िक्र नहीं होता पर वह रीना के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान बना लेता है । उपन्यास का अंत 'अंत भले का भला' मुहावरे का जैसा ज्ञात होता है। रीना पत्नी, मां और वर्किंग वूमैन की भूमिका में अवतरित होती है. शेष सभी पात्र भी अपने-अपने स्थानों पर व्यवस्थित दिखाए या बताए गए हैं।

कौशल यह है कि अर्चना इस वृहद कथा को सम्भाल कर चलती हैं । उपन्यास की कहानी में बहुत उतार-चढ़ाव हैं, प्रसंग-बहुलता है, अधिकांश पात्रों की जिंदगी में लगातार कुछ न कुछ घटित हो रहा है । प्रमुख पात्र रीना की ज़िंदगी में अपनी पढ़ाई के अतिरिक्त प्रेम की उपस्थिति, परिवार के साथ टकराव और जुड़ाव, मामा सुरेश के प्रति सहज संवेदना, नौकरी और स्थान-परिवर्तन के क्रम में कई आयाम जुड़ते

हैं । उपन्यास में जो बहुत कुछ लगातार घटित होता हुआ दिखाया गया है, उसका सन्दर्भ केवल व्यक्तिगत ही नहीं रह जाता, वह देश और विदेश के सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परिदृश्य को भी उजागर करता है । उपन्यास के आरम्भ में ही काँवरियों और बम विस्फोट के बहाने उस भारत की तस्वीर दी गई है, जिसके बारे में कहा जाता है कि 'द ओनली थिंग सरटेन इन इंडिया इज़ अन्सर्टेनिटी' । प्रवासी जीवन के संघर्ष, विदेश में अनुभव होने वाला परायापन या अकेले आक्रान्त होना और इन सबके बीच विदेश-प्रवास के अनुभवों की मज़ेदार टिप्पणियाँ उपन्यास को न केवल रोचक बनाती हैं, बल्कि जीवन के प्रति एक समझ को भी उद्घाटित करती हैं । नवागत प्रवासी हरी को निर्मल शर्मा की यह सीख इसी कोटि की है - 'यहाँ तीन बातों का कभी यकीन न करना - वेदर, वर्क और वूमेन.... थ्रो-अवे कल्चर यहाँ बहुत ही स्ट्रोंग है। बी अवेर ।'

रीना अपने पूर्वजों की धरती भारत से स्वयं को जुड़ा हुआ पाती है । लेकिन वहाँ है - भीड़, गर्मी और उमस भरा कठिन जीवन । इसकी तुलना में रीना की जन्म-स्थली डेनमार्क और उस विदेश में प्रवास की स्मृतियाँ प्राय: सुखद हैं -'स्फूर्तिदायक ठंडी हवा, साफ़ सुथरी सड़कें' । किन्तु फिर भी कुछ ऐसा है जो रीना को प्रश्नाकुल बनाए रखता है - ''उसने स्वयं को डेनिश कभी नहीं समझा. और हिन्दुस्तान आने पर उसे हिन्दुस्तान पराया लगता है । '' रीना के मन की यह कशमकश एक ओर उसे डेनमार्क के लिए यह कहने को बाध्य करती है - 'यह उसका देश है, शी बिलांग्स हेअर' । दूसरी ओर वही रीना उम्र में परिपक्व हो जाने पर भारत-प्रवास में भी आनंद लेती है । अंग्रेज़ी में कहते हैं -'सेन्स ऑफ बिलोंगिंग लीड्स टू हैपीनेस' । रीना को इसी खुशी की तलाश है । व्यापक और निजी दोनों स्तरों पर । विवाह से पहले भारत आने पर जिस प्यार की खुशी में उसने राधेश से कहा था 'आई बिलांग टू यू', उसी प्रेम की असफलता पर वह कहती है - 'वी डोंट बिलांग टूगेदर' ।

लेकिन यह उपन्यास केवल एक प्रवासी मन की दु:ख-गाथा भर नहीं है, बल्कि इसमें जीवन-चिंतन के एकाधिक अन्य आयाम हैं ।

भारतीय माता-पिता की सहमति से हुए आशा-सुभाष के विवाह पर उपन्यास में टिप्पणी की गई है कि वे - ''विवाह रूपी कारावास के दो खुशहाल कैदी'' बन गए । इसके बरक्स

'धर्म समाज में एक विश्वास न हो कर एक मिथ्या अभिमान बन जाता है, कई बार किसी स्थान पर घटित घटना वहीं खत्म नहीं होती उसका असर हम पर उम्र भर बना रहता है, जिंदगी को हम जैसा चाहे वैसा जी लें यह हमारे वश में नहीं है, हम किसी से तभी प्यार करते हैं जब वह व्यक्ति हमारे साथ ढंग से पेश आता है, प्यार शर्त हीन नहीं होता, जिंदगी बर्बाद करने के लिए सिर्फ़ एक ही गलती काफ़ी होती है, प्रेम चाहे कितना ही असीम व अनंत क्यों न हो, सबकुछ जीत नहीं सकता । किसी भी रिश्ते को बनाने के लिए मन की भावनाओं के अलावा कई अन्य तथ्य इतने महत्वपूर्ण होते हैं कि उन्हें उपेक्षित नहीं किया जा सकता ।'

उपन्यास में डेनमार्क की विवाहिता नारी की मुक्ति की कामना या कह सकते हैं कि मुक्त स्थिति की कथा भी है । लिंडा मुक्त रहना चाहती है, स्टेफेनी भी उसी राह पर चल रही है । रीना को भी बंधन स्वीकार्य नहीं। रीना अपनी पहचान को बनाए रखने को तत्पर बेबाक युवती है । बीतते समय के साथ उसने अपने भीतर जीवन की और अपने आसपास की एक स्वस्थ समझ विकसित की, जिसकी वजह से अंत में वह एक सफल नारी के रूप में दिखाई देती है । वह दो-टूक निर्णय लेती है, घबराती नहीं । किन्तु हवा में उड़ान भरने से पहले अपने परों को तोलती है । वह भावना से भर कर समर्पित होना चाहती है, प्यार में डूबना चाहती है, पर केवल स्वप्नलोक में ही नही रहती । उसके पाँव यथार्थ की भूमि पर टिके रहते हैं । उसके पास एक पैनी नज़र है, इसलिए कठिनाइयों से शीघ्र ही उबर आती है । उसमें नकारात्मक सोच नहीं है, वह इतनी ज़िद्दी नहीं कि सबसे सदा के लिए दूर हो जाए । बल्कि अपनी सद्इच्छाओं के होते वह सबसे जुड़ जाती है । यह उसकी 'बेसिक गुडनेस' के कारण ही संभव होता है, कि वह फिर से माँ के निकट आती है, अपने परिवार से जुड़ती है । वह निष्ठावान है । वह साधारण से कुछ अलग है, घर छोड़ने से पहले छोटी बहन को बता देती है ताकि माता-पिता परेशान न हों । वह उनके साथ धोखा नहीं करना चाहती । लेकिन इतनी मज़बूत भी है कि निर्णय ले लिया तो पीछे नहीं हटती । वह आधुनिक युवती है, जो करती है उसकी पूरी जिम्मेवारी लेती है । भरपूर हिम्मती है, धोखा खा कर पस्त नहीं होती बल्कि जीवन को नए सिरे से शुरू करती है । इसी लिए उसके जीवन का कुछ हासिल है, वास्तव में उसका जीवन प्रेरक है । वह इस उपन्यास की उपलब्धि है ।

कमला, सुधा, स्मिता अपने जीवन की राह आसान करती कर्मठ तत्पर महिलाएँ हैं । इन सबके बीच अवसाद की गहरी रेखा की तरह कुसुम की जीवन गाथा भी अनुस्यूत है, जो यह साबित करती है कि जीवन की अस्थिरता के बीच पाने और खोने का अनवरत क्रम बना रहता है ।

उपन्यास के विन्यास में कई सार्थक निष्कर्षों को पाया जा सकता है : 'धर्म समाज में एक विश्वास न हो कर एक मिथ्या अभिमान बन जाता है, कई बार किसी स्थान पर घटित घटना वहीं खत्म नहीं होती उसका असर हम पर उम्र भर बना रहता है, जिंदगी को हम जैसा चाहे वैसा जी लें यह हमारे वश में नहीं है, हम किसी से तभी प्यार करते हैं जब वह व्यक्ति हमारे साथ ढंग से पेश आता है, प्यार शर्त हीन नहीं होता, जिंदगी बर्बाद करने के लिए सिर्फ़ एक ही गलती काफ़ी होती है, प्रेम चाहे कितना ही असीम व

अनंत क्यों न हो, सबकुछ जीत नहीं सकता । किसी भी रिश्ते को बनाने के लिए मन की भावनाओं के अलावा कई अन्य तथ्य इतने महत्वपूर्ण होते हैं कि उन्हें उपेक्षित नहीं किया जा सकता ।'

उपन्यास के शीर्षक में प्रश्न निहित है, उपन्यास का अंत भी प्रश्न के साथ ही होता है - 'नैना पता नहीं क्या गुल खिलाती है?' यह प्रश्नाकुलता ही जीवन की गति है ।

उपन्यासकार के पास दृश्य निर्माण की बारीक कला है, वे एयरपोर्ट, पार्टी, घर, पर्यटन स्थल की जो डिटेल देती हैं, जैसा ब्यौरेवार अंकन करती हैं, वह आँखिन देखी का घनीभूत प्रभाव है । अर्चना के पहले उपन्यास 'परिवर्तन' के प्राक्कथन में हिमांशु जोशी ने लिखा : 'लेखिका ने अपना परिवेश गहराई से जिया । जो देखा ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने की चेष्टा की', यह कथन उनके दूसरे उपन्यास के लिए भी सच है ।

उपन्यास ने हमारे अनुभव के दायरे को बढ़ाया, एक नया परिदृश्य खोला है, यह इसकी विशेषता है। संघ शाखा से चर्च-सरमन तक, अप्रवासी नियमों-सुविधाओं से एकल विद्यालय और विदेश में विभिन्न भारतीय गतिविधियों की विस्तृत चर्चा तक उपन्यास का कथा-सूत्र प्रसार पाता है । यह सब भी केवल सूचना भर नहीं, अच्छी पकड़ के साथ यहाँ उपस्थित है । निस्संदेह लेखिका ने श्रमपूर्वक तथ्य जुटाए हैं, विदेश प्रवास की कठिनाइयों के साथ-साथ वहाँ प्राप्त सुविधा और लाभ की चर्चा भी की है । यूरोपीय देश के रूप में डेनमार्क की विशद छवि भी दी है, वहाँ के माहौल से परिचित कराते हुए कई जिज्ञासाओं को शांत किया है ।

उपन्यास के लेखन से प्रकाशन तक एक लंबी समयावधि रही । यह महत्वपूर्ण और मूल्यवान है कि लेखिका ने कृति को एक व्यापक फलक प्रदान किया । किन्तु फिर भी कुछ कमियाँ बेहद खटकती हैं । यह देख कर आश्चर्य होता है कि भारतीय ज्ञानपीठ जैसी प्रकाशन संस्था ने वर्तनी की इतनी अशुद्धियों सहित प्रकाशन किया । उपन्यास समग्रतः प्रभावी है । लेकिन कहीं-कहीं ऐसे कमज़ोर अंश आते हैं जब केवल सर्वनामों में बात हो रही है और कथा-सूत्र छूटता हुआ मालूम होता है - कौन किससे कह रहा है - वे पात्र सर्वनामों की भीड़ में खोए हुए से लगते हैं । लेखिका की अभिव्यक्ति अपर्याप्त नहीं, पर वाक्य-रचना और शब्द-विधान स्थान-स्थान पर अनगढ़-अटपटे हुए हैं ।

किन्तु फिर भी यह कहना उचित होगा कि 'विस्थापन, प्रवास, संस्कृति भेद, आधुनिकता और पारंपरिक जीवन मूल्यों के विविध प्रश्नों के उत्तर' तलाशते इस उपन्यास का महत्व इन कमियों के कारण कम नहीं होता । लेखिका की जिस 'स्पष्ट व पारदर्शी सामाजिक दृष्टि को उपन्यास की ताकत' बताया गया है और 'कथावस्तु, चरित्र और वर्णन शैली की विशिष्टता को उपन्यास की उपलब्धि' । (फ्लैप से) उससे असहमत नहीं हुआ जा सकता ।

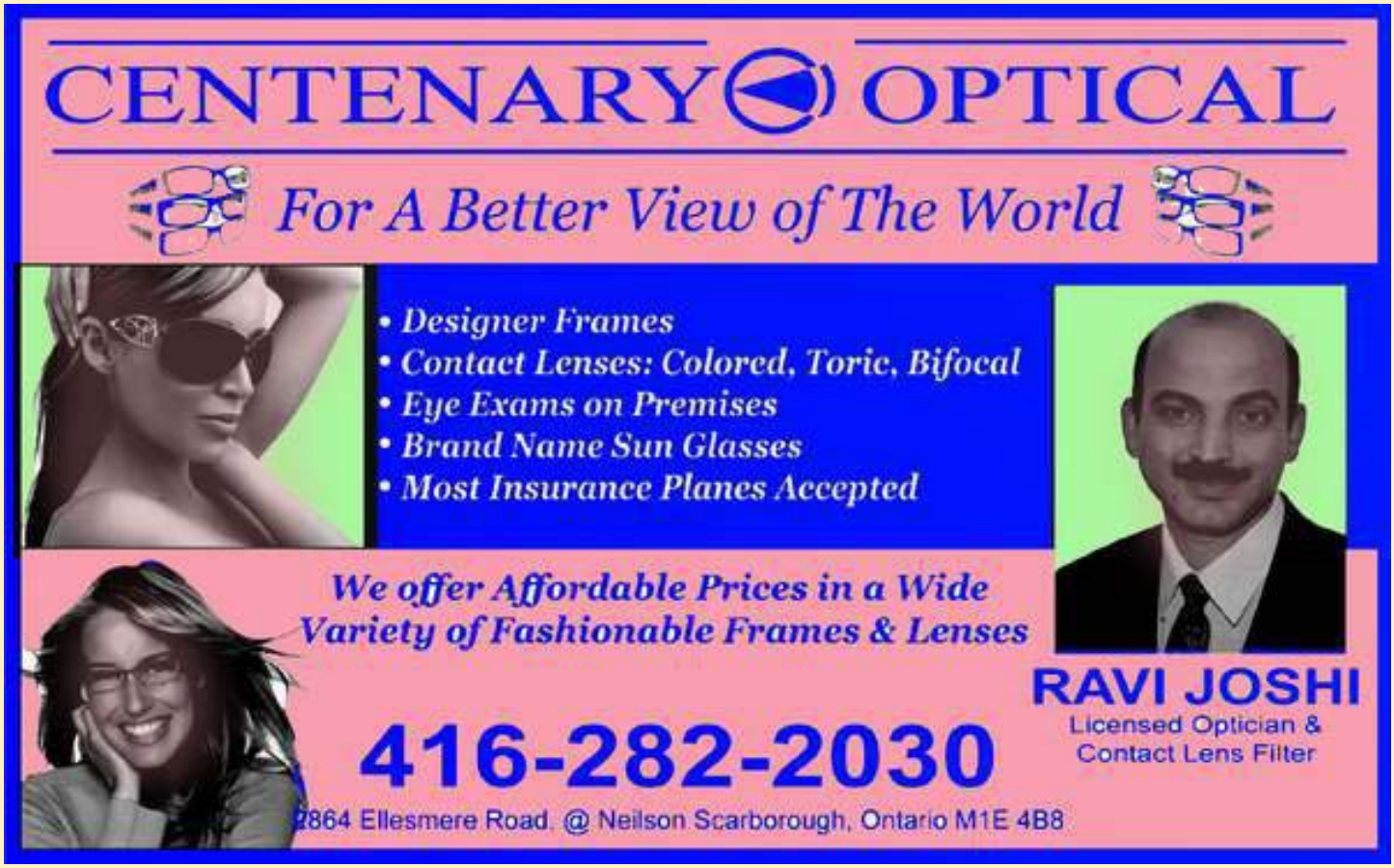

पुस्तकें जो हमें मिलीं

●मेरे सात जनम ●समुद्र पार हिन्दी ग़ज़ल
●अनेक रंग ●चन्दनमन ●कही अनकही

मेरे सात जनम
(हाइकु संग्रह)
रामेश्वर काम्बोज
'हिमांशु'
अयन प्रकाशन ,
महरोली, नई दिल्ली
११० ०३०
मूल्य: १६०.०० रूपये
मुद्रक : विशाल
कौशिक प्रिंटर्स ,
शाहदरा , दिल्ली -
११००९३

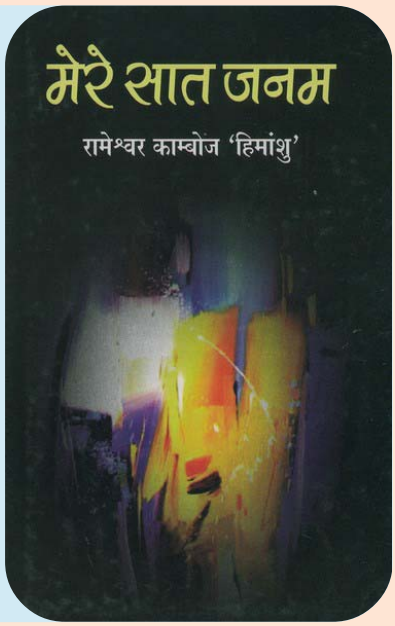

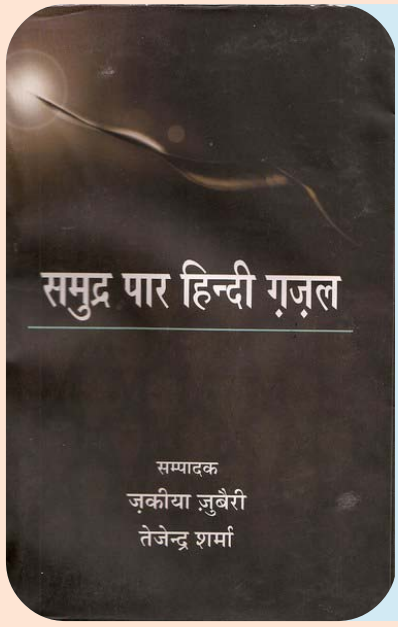

समुद्र पार हिन्दी
ग़ज़ल (विदेशों में बसे
हिन्दी ग़ज़लकारों की
ग़ज़लें)
संपादक -ज़किया
ज़ुबैरी, तेजेन्द्र शर्मा
प्रकाशक -शिला लेख,
4/32, सुभाष गली,
विश्वास नगर,
शाहदरा ,
दिल्ली -३२
मूल्य -300 रूपये

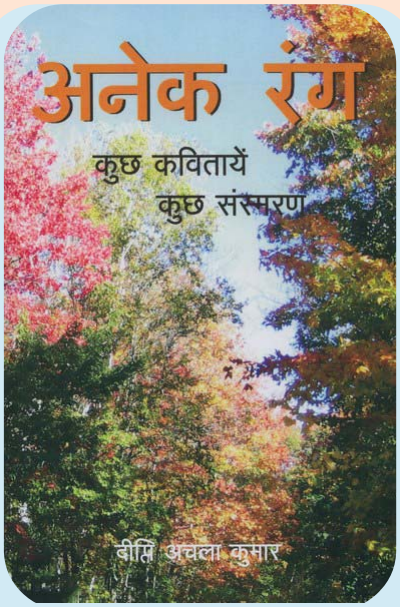

अनेक रंग -
कुछ कविताएँ कुछ संस्मरण -
दीप्ती अचला कुमार
पब्लिशर - अशोक कुमार
प्रिंटेड - उदय मोदी
मूल्य - 10 कैनेडियन डॉलर

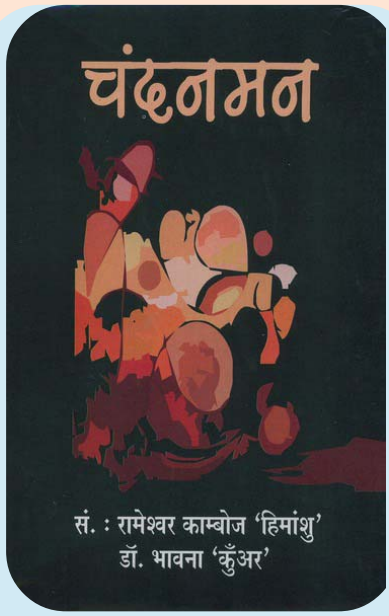

चन्दनमन-
सं.: रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'
डॉ. भावना 'कुँअर'
अयन प्रकाशन, महरोली नई
दिल्ली
मूल्य : १६०.०० रूपये

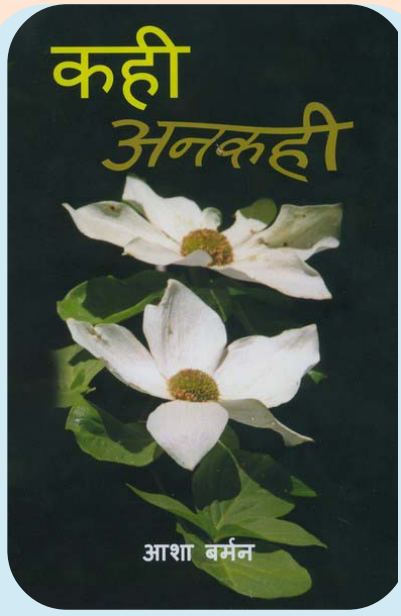

कही अनकही -
आशा बर्मन
पब्लिशर
हिंदी राइटर्स गिल्ड
नवम्बर २०११
मूल्य- १०.०० कैनेडियन डालर

पुस्तकें जो हमें मिलीं

●अमरीका में आनन्द ●मारीशस की लोक कथाएँ ●हिन्दी का प्रवासी साहित्य ●अथ से इति ●बेगाने मौसम

अमरीका में आनन्द – डॉ. जयजयराम आनन्द
आनन्द प्रकाशन
प्रेम निकेतन – ई – ७/७०, अशोका सहकारी समिति अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र) – ४६२०१६
मूल्य विदेश १२.९९ भारत १२.९९ रूपये

मारीशस की लोक कथाएँ – हिंदी लेखक संघ मारीशस
प्रकाशक :
स्टार पब्लिकेशन्स
४/५ बी . आसफअली रोड
नई दिल्ली –२ भारत
वितरक– मारीशस हिंदी लेखक संघ
मुद्रक : एक्सल प्रिंटर्स, दिल्ली

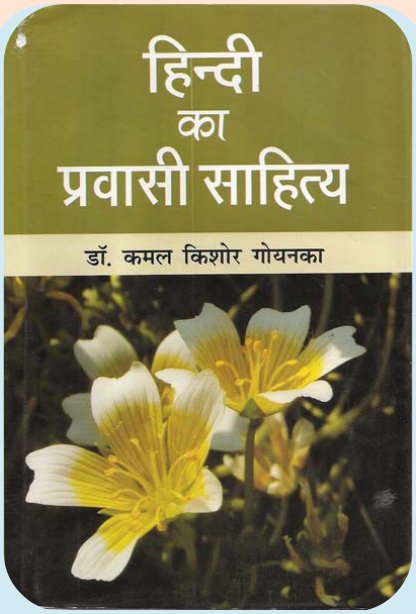

हिन्दी का प्रवासी साहित्य– डॉ. कमल किशोर गोयनका
प्रकाशक –अमित प्रकाशन , के. बी. 97, कवि नगर, गाज़ियाबाद –२०१००२
मूल्य –छः सौ रुपये

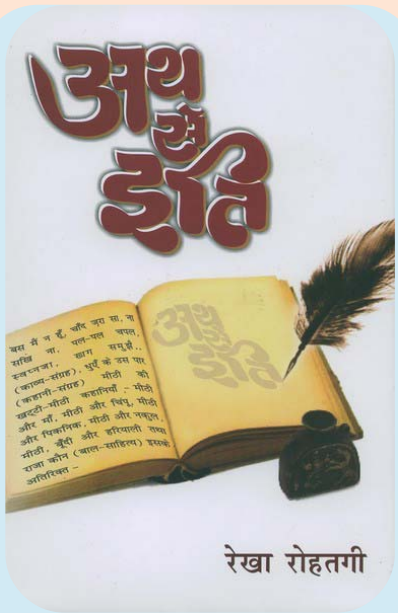

अथ से इति–
रेखा रोहतगी
(टांका एवं हाइकु संग्रह)
अमृत प्रकाशन शाहदरा – दिल्ली –११००३२
मूल्यः १५. 00 रूपये

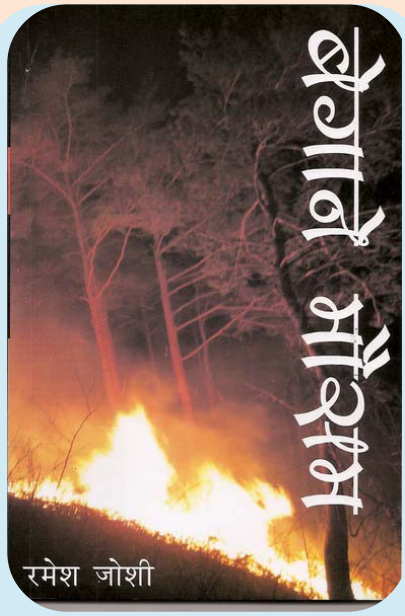

बेगाने मौसम (ग़ज़ल–गीतिकाएं)– रमेश जोशी
प्रकाशक – Thinking Hearts, Karnataka, India
मूल्य विदेश –4.99,
भारत –120 रुपये

FAMILY DENTIST

Dr. N.C. Sharma
Dental Surgeon

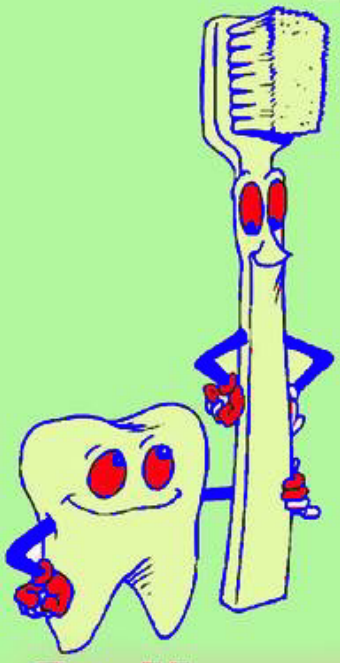

Dr. C. Ram Goyal
Family Dentist

Dr. Narula Jatinder
Family Dentist

Dr. Kiran Arora
Family Dentist

Call us at: 416-222-5718

1100 Sheppard Avenue East, Suite 211, Toronto, Ontario M2K 2W1 Fax: 416-222-9777

साहित्यिक समाचार

प्रेम जनमेजय पर केंद्रित 'हिन्दी चेतना' के विशेषांक का लोकार्पण और विचार संगोष्ठी

'रपट' साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्था 'दिल्ली संवाद' की ओर से ९ दिसम्बर,२०११ को साहित्य अकादमी सभागार, नई दिल्ली में एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया । इस संगोष्ठी की अध्यक्षता वरिष्ठ आलोचक डॉ. नामवर सिंह ने की और मुख्य अतिथि थे डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय। कार्यक्रम का संयोजन और संचालन वरिष्ठ लेखक और पत्रकार बलराम ने किया। इस आयोजन में भावना प्रकाशन, पटपड़गंज, दिल्ली से प्रकाशित चर्चित चित्रकार और लेखक राजकमल के उपन्यास 'फिर भी शेष' पर चर्चा से पूर्व भावना प्रकाशन से सद्य: प्रकाशित दो पुस्तकों - वरिष्ठतम कथाकार हृदयेश की तीन खण्डों में प्रकाशित 'संपूर्ण कहानियाँ' और वरिष्ठ कथाकार रूपसिंह चन्देल की 'साठ कहानियाँ' तथा वरिष्ठ व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय पर केंद्रित 'हिन्दी चेतना' का लोकार्पण किया गया।

कार्यक्रम का शुभारंभ करते हुए बलराम ने भावना प्रकाशन, उसके संचालक श्री सतीश चन्द्र मित्तल और नीरज मित्तल के विषय में चर्चा करने के बाद वरिष्ठतम कथाकार हृदयेश के हिन्दी कथासाहित्य में महत्वपूर्ण योगदान पर प्रकाश डालते हुए कहा कि वे अपने समय के सशक्त रचनाकार रहे हैं जो अस्सी पार होने के बावजूद आज भी निरंतर सृजनरत हैं। वरिष्ठ कथाकार रूपसिंह चन्देल के उपन्यासों और कहानियों की चर्चा करते हुए बलराम ने कहा कि चन्देल के न केवल कई उपन्यास चर्चित रहे बल्कि अनेक कहानियां भी चर्चित रहीं। उन्होंने कहा कि चन्देल समकालीन कथा साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं जो अपनी सृजनशीलता में विश्वास करते हैं । चन्देल के विषय में मित्रगण जो बात गहनता से अनुभव करते हैं उसे सार्वजनिक मंच से उद्घोषित करते हुए बलराम ने कहा - ''चन्देल ने कभी नीलाम होना स्वीकार नहीं किया।''

प्रसिद्ध व्यंग्यकार प्रेमजनमेजय की व्यंग्ययात्रा पर प्रकाश डालते हुए बलराम ने कहा कि समकालीन व्यंग्यविधा के क्षेत्र में उनका महत्वपूर्ण योगदान है और उनके योगदान का ही परिणाम है कि कनाडा की पत्रिका 'हिन्दी चेतना' ने उन पर केन्द्रित विशेषांक प्रकाशित किया।

लेखकों पर बलराम की परिचयात्मक टिप्पणियों के बाद दोनों पुस्तकों और पत्रिका का लोकार्पण डॉ. नामवर सिंह, डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय और डॉ. अर्चना वर्मा द्वारा किया गया।

लोकार्पण के पश्चात राजकमल के उपन्यास 'फिर भी शेष' पर विचार गोष्ठी प्रारंभ हुई। डॉ. अर्चना वर्मा ने अपना विस्तृत आलेख पढ़ा। उन्होंने विस्तार से उपन्यास की कथा की चर्चा करते हुए उसकी भाषा, शिल्प और पात्रों पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। वरिष्ठ गीतकार डॉ. राजेन्द्र गौतम ने उसे एक महत्वपूर्ण उपन्यास बताया। वरिष्ठ कथाकार अशोक गुप्ता ने उपन्यास पर अपना सकारात्मक मत व्यक्त करते हुए उसकी प्रशंसा की। डॉ. ज्योतिष जोशी ने उसके पात्र आदित्य के चरित्र पर पूर्व वक्ताओं द्वारा व्यक्त मत से अपनी असहमति व्यक्त करते हुए कहा कि उपन्यास ने उन्हें चौंकाया बावजूद इसके कि उसमें गज़ब की पठनीयता है जो पाठक को अपने साथ बहा ले जाती है। इन वक्ताओं के बोलने के बाद डॉ. नामवर सिंह ने कहा कि ''मैंने उपन्यास पढ़ा नहीं है, लेकिन वायदा करता हूं कि उसे पढ़ूंगा अवश्य और जो भी संभव होगा करूंगा।''

कार्यक्रम के अंत में डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय ने अपना लंबा वक्तव्य दिया। उन्होंने उपन्यास के अनेक अछूते पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए पूर्व वक्ताओं से अपनी असहमति व्यक्त की, लेकिन लेखक की भाषा और शिल्प की प्रशंसा करने से अपने को वह भी रोक नहीं पाए।

भावना प्रकाशन के नीरज मित्तल ने उपस्थित लोगों के प्रति आभार व्यक्त किया. इस अवसर पर बड़ी संख्या में दिल्ली और दिल्ली से बाहर के साहित्यकार और साहित्य प्रेमी उपस्थित थे। वरिष्ठ आलोचक डॉ. कमल किशोर गोयनका, ज्योतिष जोशी, साहित्य अकादमी के उपसचिव ब्रजेन्द्र त्रिपाठी, मदन कश्यप, रंजीत साहा, प्रदीप पन्त, राजेन्द्र गौतम, सुभाष नीरव, गिरिराज शरण अग्रवाल, नार्वे से आए रचनाकार सुरेश चन्द्र शुक्ल, उपेन्द्र कुमार, राज कुमार गौतम, मेधा बुक्स के अजय कुमार, सुरेश उनियाल, मनोहर पूरी, अशोक गुप्त, बलराम अग्रवाल, रमेश कपूर सहित लगभग पचहत्तर साहित्यकार और विद्वान उपस्थित थे।

-प्रस्तुति - सुभाष नीरव

कैनेडा में हुआ 'हिन्दी चेतना' के प्रेम जनमेजय विशेषांक का विमोचन

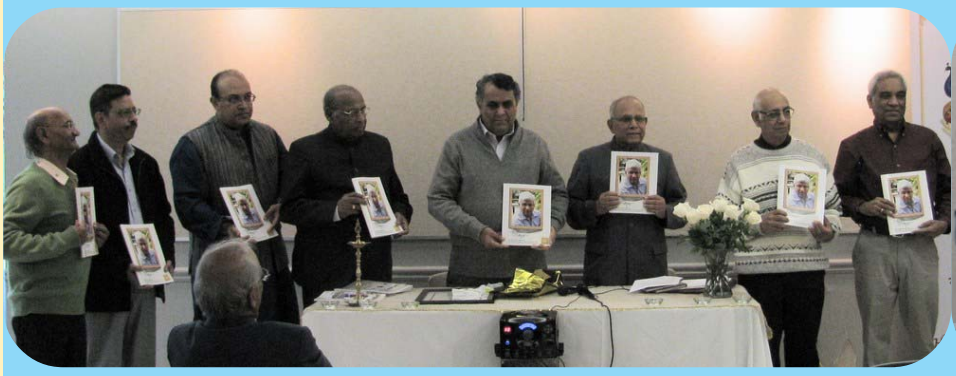

हिंदी प्रचारिणी सभा एवं हिंदी मार्खम बुक क्लब की ओर से ३ दिसम्बर को मिलिकन मिल्स लाइब्रेरी, ओंटेरियो, कनाडा में एक साहित्यिक संध्या का आयोजन किया गया । भारत से आए वरिष्ठ व्यंग्यकार एवं लघुकथाकार श्री रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' मुख्य अतिथि थे । हिंदी प्रचारिणी सभा के अध्यक्ष एवं 'हिंदी चेतना' के संरक्षक एवं प्रमुख सम्पादक श्री श्याम त्रिपाठी ने हिमांशु जी को हिंदी प्रचारिणी सभा की ओर से मान पत्र भेंट कर कार्यक्रम आरम्भ किया ।

तदुपरांत श्री रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' ने 'हिन्दी चेतना' के प्रेम जनमेजय विशेषांक का विमोचन किया । इस अवसर पर श्री रामेश्वर काम्बोज ने हिंदी चेतना की प्रशंसा करते हुए, प्रेम जनमेजय के जीवन और साहित्य के विषय में बहुत सुंदर और भावपूर्ण शब्द कहे । 'हिंदी चेतना' के सम्पादक मंडल को बधाई देते हुए उन्होंने कहा - 'हिंदी चेतना' आज विश्व की गिनी चुनी पत्रिकाओं में से एक है । आजकल भारत में भी इस स्तर की बहुत कम पत्रिकाएँ रह गईं हैं । 'हिंदी चेतना' ही एक ऐसी पत्रिका है, जो विदेशों के हिन्दी साहित्यकारों के साथ- साथ भारत के साहित्यकारों को भी सम्मानित करती है । हिन्दी चेतना के उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुए उन्होंने व्यंग्य यात्रा के संपादक प्रेम जनमेजय जी और हिन्दी चेतना के प्रमुख संपादक श्याम त्रिपाठी को निस्वार्थ भाव से हिन्दी पत्रिकाओं को समर्पित व्यक्तित्व बताया । इसके बाद श्री काम्बोज जी ने लघुकथा की कला व उसके तत्त्वों पर बहुत सुन्दरता से विवेचना की । साथ ही 'हिंदी हायकू, तांका और चौका' आदि विधाओं पर प्रकाश डाला और अपनी ३ सुंदर लघु कथाएँ सुनाकर श्रोताओं को मन्त्र मुग्ध कर दिया । उन्होंने श्रोताओं को धन्यवाद देते हुए कहा कि ऐसा शांतिमय वातावरण मैंने भारत में साहित्य अकेडमी के कार्यक्रमों में भी नहीं देखा । इसके बाद श्रोताओं ने काम्बोज जी से कुछ प्रश्न पूछे और उन्होंने बड़ी कुशलता और सहजता से उन सभी के उत्तर दिए ।

मुख्य अतिथि रामेश्वर काम्बोज जी को सुनने के बाद टोरोंटो के जाने माने कविजन (ब्रजमोहन मेहरा, आशा बर्मन, दीप्ती कुमार अचला, भारतेंदु श्रीवास्तव , स्नेह सिंघवी, देवेन्द्र मिश्रा, और प्रोमिला भार्गव) ने अपनी रचनाएँ सुना कर समय को खूब बाँधा । कार्यक्रम अत्यंत सफल और स्मरणीय था ।

अखिल भारतीय डॉ. सी. एल. प्रभात शोध समीक्षा पुरस्कार डॉ. टी. रविन्द्रन को

अहमदाबाद का अखिल भारतीय डॉ. सी. एल. प्रभात शोध समीक्षा पुरस्कार 2010-2011, बेंगलूर के लेखक डॉ. टी. रविन्द्रन को उनके समीक्षा शोध प्रबंध ''आधुनिक हिन्दी काव्य में दलित वर्ग'' के लिए, गुजरात की राज्यपाल डॉ. कमला बेनीवाल के करकमलों से दिया गया । हिन्दी में डॉ. टी. रविन्द्रन ने कई ग्रंथों एवं कविताओं की रचना की है ।

क़ब्र का मुनाफ़ा और पत्रिका रचना समय का लोकार्पण

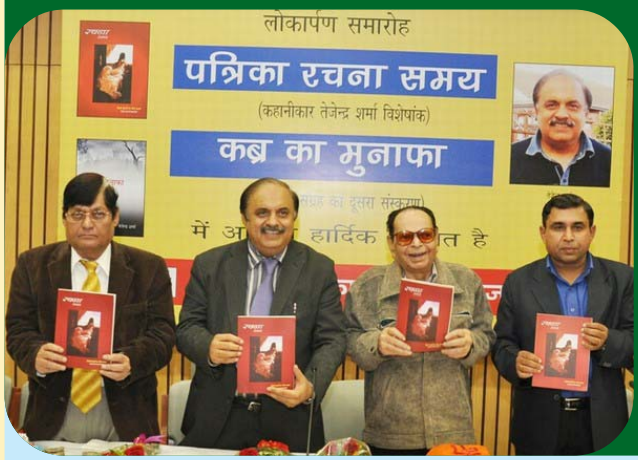

नई दिल्ली । सामयिक प्रकाशन और समाज संस्था के संयुक्त तत्वाधान में आयोजित इंडिया इंटरनेशनल सेंटर के सभागार में वरिष्ठ कथाकार एवं हंस के संपादक (कार्यक्रम के अध्यक्ष) राजेन्द्र यादव ने तेजेन्द्र शर्मा के कहानी संग्रह क़ब्र का मुनाफ़ा के दूसरे संस्करण एवं भोपाल से प्रकाशित हरि भटनागर द्वारा संपादित पत्रिका रचना समय का लोकार्पण किया । कार्यक्रम का संचालन युवा कथाकार अजय नावरिया ने किया । हिन्दी जगत के जाने-माने लेखक, पत्रकार, प्रशासनिक अधिकारी एवं गणमान्य हस्तियां इस कार्यक्रम में मौजूद थीं।

ज्योति जैन के कविता संग्रह' मेरे हिस्से का आकाश' का विमोचन

इन्दौर ।। नई पीढ़ी को कम्प्यूटर का ज्ञान देने के साथ मुझे यह आभास होता है कि परिवार से मिलने वाले संस्कार उनमें कम होते जा रहे हैं, लेकिन यह तो मेरा भ्रम था। इस समारोह में आकर यह भ्रम टूट गया क्योंकि 'अँधेरा उतना घना नहीं हुआ कि हम सर पीटें'। महिलाओं के लेखन में आज भी संवेदनाएँ महसूस होती हैं। उक्त विचार सुविख्यात युवा कवि श्री पंकज सुबीर ने लेखिका ज्योति जैन के कविता संग्रह' मेरे हिस्से का आकाश' के विमोचन के अवसर पर व्यक्त किए। खूबसूरत भावाभिव्यक्तियों से सज्जित इस आकर्षक संग्रह का विमोचन इन्दौर के प्रीतमलाल दुआ सभागार में वरिष्ठ कवि श्री कृष्णकांत निलोसे की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। लेखन की विभिन्न विधाओं में दक्ष लेखिका ज्योति जैन के इससे पूर्व लघुकथा संग्रह 'जलतरंग' और कहानी संग्रह 'भोर वेला' साहित्य जगत में दस्तक दे चुकी हैं। वरिष्ठ कवि कृष्णकांत निलोसे ने अध्यक्षता करते हुए कहा कि आज ज्योतिजी के सम्मान का दिन है क्योंकि उन्होंने 'मेरे हिस्से का आकाश' से स्त्रियों का मान बढ़ाया है। स्त्री के लिए खिड़की के बराबर कोने भर आकाश होता है लेकिन उन्होंने कविता संग्रह से इस आकाश को कई गुना बढ़ा दिया। इस अवसर पर नईदुनिया के स्थानीय संपादक श्री जयदीप कर्णिक ने विशेष रूप से शुभकामनाएं व्यक्त की। अतिथि परिचय संजय पटेल ने दिया। संचालन सुश्री स्मृति जोशी ने किया।

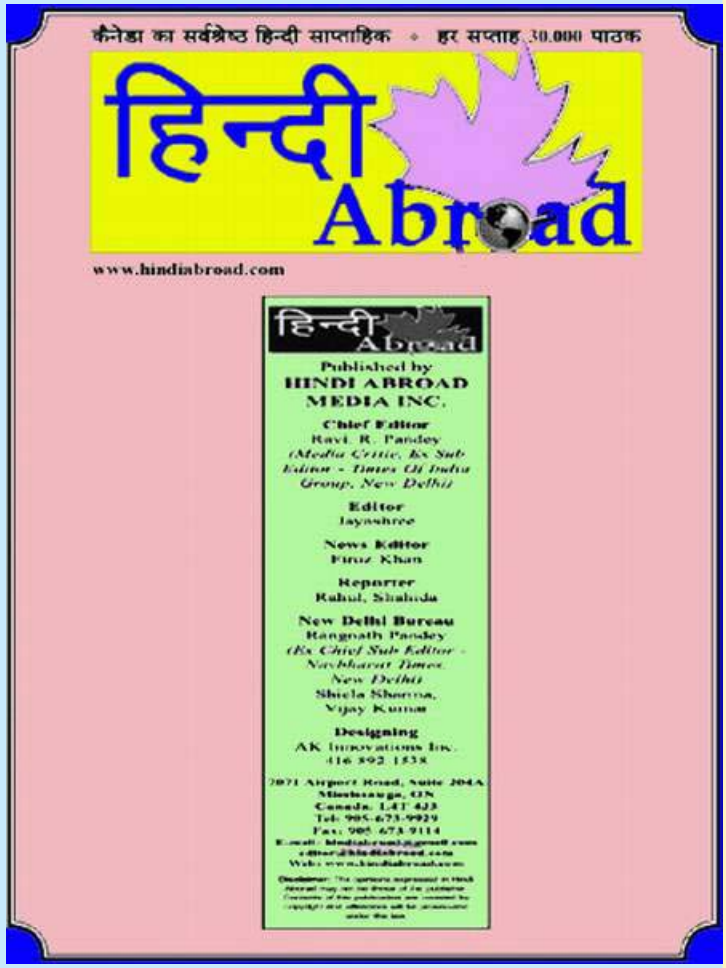

SAI SEWA CANADA

(A Registered Canadian Charity)

Address: 2750, 14th Avenue, Suite 201, Markham, ON, L3R 0B6
Phone: (905) 944-0370 Fax: (905) 944-0372
Charity number: 81980 4857 RR0001

Helping to Uplift Economically and Socially Deprived Illiterate Masses of India

Thank you for your kind donation to SAI SEWA CANADA. Your generous contribution will help the needy and the oppressed to win the battle against lack of education and shelter, disease, ignorance and despair.

Your official receipt for Income Tax purposes is enclosed.

Thank you, once again, for supporting this noble cause and for your anticipated continuous support.

Sincerely yours,

Narinder Lal • 416-391-4545 Service to humanity

DON'T PAY THAT TICKET!

Al (Doodie) Ross
(416) 877-7382 cell

ROSS
LEGAL SERVICES

Former Toronto Police Officer,
28 Years Experience

Arvin Ross
(416) 560-9366 cell

We Can Help with all Legal Matters: सच्ची सेवा करते हैं । ईश्वर से हम डरते हैं ।।

Traffic Offences
Summary Criminal Charges
Impaired Driving / Over 80
Accidents
Commissioner for Taking Affidavits
Criminal Pardon and / or a United States Border Waiver

95%
Success Rate!

16 FIELDWOOD DR.
TORONTO ONTARIO, M1V 3G4
OFFICE: (416) 412-0306
FAX: (416) 412-2113

Ross@RossParalegal.com www.RossParalegal.com ROSS

भाषान्तर

●भाषान्तर : रमेश शौनक

अक्ष

मूल रचना : आकताविओ पाज़

रक्तनाल के माध्यम से
मेरे शरीर में तुम्हारा शरीर
रात्री निर्झर
मेरी सूर्य जिह्वा तुम्हारे वन में
तुम्हारा गुन्थ रहा शरीर
मैं रक्ताभ गेहूं अस्थियों के माध्यम से
मैं रात्री, मैं जल
मैं आगे बढ़ रहा गहन वन
मैं जीभ
मैं शरीर
मैं सूर्य शरीर
रात के माध्यम से
शरीरों के माध्यम से
तुम गेहूं की रात्री
तुम सूर्य में वन
तुम प्रतीक्षारत जल
तुम गुन्थ रहे शरीर
सूर्य के माध्यम से
मेरी रात में तुम्हारी रात
मेरे सूरज में तुम्हारा सूरज
तुम्हारे गुधने में मेरा गेहूँ
मेरी जीभ में तुम्हारा गहन वन
शरीर के माध्यम से
रात्री के पानी से
मेरे शरीर में तुम्हारा शरीर
अस्थियों के निर्झर
सूर्यों के निर्झर ।

●

तितली

मूल रचना : निकी जिओवानी

जिन्हें तुम सहज हँसी में
हाथ कहते हो वह असल में
मेरे जिस्म को अता की गयी
मसर्रत पर फरफराती तितलियाँ हैं।

●

स्पर्श

मूल रचना: आकताविओ पाज़

मेरे हाथ तुम्हारे अस्तित्व के परदे खोलते हैं
तुम्हारे नंगेपन को नंगापन पहना देते हैं
तुम्हारे शरीर के शरीरों को उघार देते हैं
तुम्हारे शरीर के लिए
एक नया शरीर आविष्कार करते हैं ।

●

romeshshonek@gmail.com

नव अंकुर

●अमित लव (भारत)

पेड़ की आवाज़

मेरे हाथों रुपी डाली को काटा ।
मेरे पैरों रुपी जड़ों को काटा ।
काट के पलंग बनाया...
दरवाज़े बनाए
और मुझे सजाया
घर में शो केस बना के ।
जान नहीं मुझ में
बेजान हूँ यह कहते हैं सब ।
इंसान नहीं
काग़ज़ बनाने वाला सामान हूँ
यह भी कहते हैं सब ।
कौन समझाए
कि जान नहीं होती
तो कैसे मैं बढ़ता
फूल और फल देकर
कैसे मैं सबका पथ भरता ।
हाँ वो भूल गया
मुझमें आवाज़ डालना
पर इसका मतलब नहीं
उसको मैं याद नहीं...
देख रहा वो ऊपर से
मुझे कटे हुए,
बच्चों की किताब
और मुझसे ही
अपना मंदिर बनते हुए ।
पेड़ हूँ पेड़ की आवाज़ ,
तो सिर्फ वही सुनता है...
चलती जब मुझपे कुल्हारियाँ,
तो सिर्फ वही रोता है...
कहता है
कैसा मैंने तुझको दर्द दिया...
आवाज़ तो ले ली और
अपने ही इंसानों को
काटने का हक़ दे दिया ।
पछता रहा है वह,
नष्ट होती
अपनी प्रकृति देख...
ऑक्सिजन का स्त्रोत काटते,
भ्रष्ट होती इंसानी बुद्धि देख...

●

songwrittervwx@gmail.com

Hindi Pracharni Sabha

(Non-Profit Charitable Organization)

Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna ID No. 84016 0410 RR0001

Membership Form

For Donation and Life Membership we will provide a Tax Receipt

Annual Subscription: **$25.00 Canada and U.S.A.**

Life Membership: **$200.00**

Donation: **$_____**

Method of Payment: **Cheque, payable to "Hindi Pracharni Sabha"**

For India:
Pankaj Subeer
P.C. Lab
Samrat Complex Basement
Opp. Bus Stand
Sehore -466001
M.P. India
Phone: 07562-405545
Mobile: 09977855399

सदस्यता शुल्क (भारत में)
वार्षिक: 400 रुपये
दो वर्ष: 600 रुपये
पाँच वर्ष: 1500 रुपये
आजीवन: 3000 रुपये

Name: _____

Address: _____

_____

_____

Telephone: Home: _____ **Business:** _____

Mobile: _____ **Fax:** _____

e-mail: _____

Contact in Canada:

Hindi Pracharni Sabha
6 Larksmere Court
Markham, Ontario L3R 3R1
Canada
(905)-475-7165
Fax: (905)-475-8667
e-mail: hindichetna@yahoo.ca

Contact in USA:

Dr. Sudha Om Dhingra
101 Guymon Court
Morrisville,
North Carolina
NC27560, USA
(919)-678-9056
e-mail: ceddlt@yahoo.com

अधेड़ उम्र में थामी कलम

●श्रीमती अमिता रानी (अमेरिका)
●राजकुमारी सिन्हा (अमेरिका)

श्रीमती अमिता रानी (अमेरिका)

वादियों का समां

मैं घर से जब चली, राह भूल गयी,
पेड़ों की भीड़ में, चलती ही गयी,
वादियों में जाकर, मैं कैसी खो गयी,
मैं घर से जब चली, राह भूल गयी,

◆

मुझको बनाने वाले, आवाज मेरी सुन,
न जाने आज क्यूं, गुनगुना रही हुं धुन,
गहरी वादियों में, हो जाये ना ये गुम,
इन वादियों में खोया, संगीत है मेरा ।
मैं घर से जब चली, राह भूल गयी,

◆

न जाने मन मेरा, ढूँढ़ता किसे,
सोचती हूँ मैं, ये पूछूँगी कैसे,
ये दिल की बात है, कहना न किसी से,
इन वादियों में खोया, मीत है मेरा ।
मैं घर से जब चली, राह भूल गयी,

वो कौन था जो आकर, खुशियाँ दे गया,
दर्दे जिगर से मेरा, वो दर्द ले गया,
वो कौन था वो कौन था, कहाँ चला गया,
इन वादियों में खोई, खुशियाँ है मेरी ।
मैं घर से जब चली, राह भूल गयी,

◆

भँवरे की गुनगुनाहट, चिड़ियों का चहकना,
हवा की सनसनाहट, झरने का झरझराना,
नदियों में उठती गिरती, लहरों का लहराना,
इन वादियों में बहते, अरमान हैं मेरे ।
मैं घर से जब चली, राह भूल गयी,

◆

मैं घर से जब चली, राह भूल गयी,
पेड़ों की भीड़ में, चलती ही गयी,
वादियों में जाकर, मैं कैसी खो गयी ।

●

amitarani2010@gmail.com

नव वर्ष के स्वागत में राजकुमारी सिन्हा (अमेरिका)

आ रहा नव वर्ष
स्वागत करो उसका
आ रहा स्वर्ण विहान
अभिनन्दन करो उसका...
सिंदूरी आभा फ़ैल रही,
धीरे-धीरे पग धरती
मनोहरी उषा आ रही...
मैं हूँ सूर्य तुम्हारे जीवन का
द्वार तुम्हारे आया हूँ...
जागो! आँखें खोलो,
उपाधान से शीश उठाओ,
आवरण दूर हटाओ,
हृदय के वातायन खोलो...
जो बहुत दिनों से बंद पड़े हैं ...
खोलो घर के द्वार...
मैं जीवन का सूर्य-
ला रहा स्वर्णीय किरणों को
और अबाध ऊर्जा को...
ला रहा हूँ इंद्र धनुष की
सतरंगी विभा को...
मधुरस से पूर्ण सुगंध उपवन की
शीतलता हिमकण की...
और अग्नि की प्रखर उष्णता
आलोकित मुझसे अम्बर का आनन,
धन धान्य भरा जगत का कानन...
वायु के झौंकों में गीत लाया हूँ
जागो! उठो!
अंतर में छा जाने दो...
प्रकाश उर्जा आभा को
गायत्री की शुचिता
और सुगंध उपवन की ।

●

विलोम चित्र काव्य शाला

●चित्रकार : अरविंद नराले
●कविः सुरेन्द्र पाठक

चित्र को उल्टा करके देखें

देखिये इस तस्वीर में, जेल की सलाखों के पीछे
टोप पहने युवक खड़ा है, और बूढ़ा बैठा है नीचे
दोनों ने एक जैसे ही, पहने हुए हैं कपड़े,
क्या कानून इन्होंने तोड़ा, क्यों गये हैं ये पकड़े ?

वेश भूषा से हैं लगते, ये दोनों हों शिकारी,
पकड़ लाये इनको शायद, जंगल के अधिकारी,
जंगल का कोई कानून, इन्होंने होगा तोड़ा,
जेल में अब बंद हुए तो, इन्हें पता चलेगा थोड़ा,

जंगली पशुओं को पकड़ कर, करें चिड़िया घरों में बंद,
खाल उतारें दांत उखाड़ें, बेरहमी से डालें फंद,
उनकी खालों से कपड़े, पहन के अपने को छुपायें,
इंसानों को भरमायें इंसान, पशुओं को भी भरमायें,

चित्र उलटा करके देखो, तुरंत जाओगे तुम जान,
जानवरों के साथ क्या बर्ताव, करते हैं ये शैतान ।

●

चिड़िया घर के किसी पिंजरे में, चीता खड़ा हुआ बेचारा,
दिन-रात शायद ये सोचे कि कैसे हो उसका छुटकारा,
बिना शिकार के मिलती है, पर मिले खुराक इसे आधी,
मरने तक ये न भूलेगा, अपनी जंगल की आज़ादी,

बेचैनी से इत-उत घूमे, थके गिरे और सो जाए,
तन अपना सबको दिखलाए, मन किसको दिखलाए?
झुकी है गर्दन तन पे सुस्ती, और आँखों में उदासी,
बंधन में बस, काट रहा है, अपनी एक जून चौरासी ।।

तात्पर्य

अपना दिल बहलाने को, क्या क्या अत्याचार करे इंसान,
बेजबान पशुओं के ऊपर, बुद्धि से बन बैठा भगवान ।।

●

Shil K. Sanwalka, Q.C.
Barrister, Solicitor & Notary

18 WYNFORD DRIVE,
SUITE #602,
DON MILLS, ONT. M3C 3S2

Telephone: (416) 449-7755
Fax: (416) 449-6969

sksanwalka@rogers.com

चित्र काव्य शाला

●चित्रकार : अरविंद नराले

किस सोच में बैठी हो तुम, क्या तुम्हारे मन में है।
क्या किसी परिकल्पना के स्वप्न बुन रही हो तुम।
या किसी पनघट पे बैठी जोह रही हो बाट पिया की
होकर यों गुमसुम।
कब आयेंगे अब आयेंगे यूँ घड़ियाँ गिन रही हो तुम।
नयनों में एक उत्सुकता है प्रेम भाव भी छलक रहा है।
क्या सजना से मधुर मिलन के सपने सँजो रही हो तुम।

सुधा मिश्रा(टोरोंटो)

●

ये माथे पे बिंदिया, ये मोती का हार
ये हाथों में चूड़ी, ये सोलह सिंगार,
तेरे नैनों से बरसे, इक माता का प्यार।

सर पे पल्लू सजा के, तू बर्तन भी माँजे
तू मटका उठा के, और पनघट पे जाके,
पानी को लाके, करें इंतज़ार
तेरे नैनों से बरसे, इक माता का प्यार।

तू शहर में रहे, या रहे गाँव में
घर सुख से चले, बस तेरी छाँव में,
तू सुरों का है सरगम, तू वीणा की तार
तेरे नैनों से बरसे, इक माता का प्यार।

प्रेम मालिक (कैनेडा)

●

पनघट बैठ सोचूँ...
कब हो जीवन का सवेरा,
चारों ओर फूलों के लदे बाग़,
पनघट में न मिले मेरी ख़ाक ।

घर सँभालते
निकली ज़िन्दगी,
मिला न अपने लिए वक्त;
तन्हाई ने साथ छोड़ दिया,
रह गया
चूला-चौका
और शांत रक्त ।

धमनियों में रस नहीं,
अलसाई सी हूँ पड़ी,
अंधियारे का घूँघट ओढ़े,
रोशनी की तलाश में
हूँ मैं बैठी ।

अदिति मजूमदार (अमेरिका)

●

कौन है यह युवती
क्या सोच रही है
क्या किसी का यह
इन्तज़ार कर रही है
मन में आता है
जाकर पूछूँ , क्या
परेशानी है तुझे
या फिर जा कहूँ
प्यास है बहुत मुझे
क्या थोड़ा सा जल
सेवन कराओगी मुझे
वास्तव में मेरी,
मन:स्थिति है डाँवाडोल
इस भोली-भाली सूरत
और सुंदर नयनों ने
जादू ऐसा कर दिया
कि मेरा घायल हृदय
अब मेरा नहीं रहा
अब मुझे भी आख़िर
अनुभव यह हो रहा
प्रेम रोग जब लगता
तब होती है दशा क्या.....

राज महेश्वरी (कैनेडा)

●

इस चित्र को देखकर आपके मन में कोई रचनात्मक पंक्तियाँ उमड़-घुमड़ रही हैं, तो देर किस बात की, तुरन्त ही काग़ज़ क़लम उठाइये और लिखिये। फिर हमें भेज दीजिये । हमारा पता है :

HINDI CHETNA
6 Larksmere Court, Markham, Ontario, L3R 3R1,
e-mail : hindichetna@yahoo.ca

आख़िरी पन्ना

वर्षों से मैं अंतर्जाल से जुड़ी हूँ और विश्व के कोने-कोने में मेरे साहित्यिक मित्र अंतर्जाल की देन है । कइयों को मैं मिली नहीं पर वे अपने से लगते हैं । उनके दु:ख-सुख मेरे हैं । तकनीकि प्रगति के इस युग में अंतर्जाल मानव को बहुत क़रीब ले आया है । यही निकटता भाषाओं में भी है । भाषाओं की प्रगति और प्रसार में अंतर्जाल का योगदान सराहनीय है । हिन्दी साहित्य को इसने बहुत से नए रचनाकार दे कर समृद्ध किया हैं ।

'हिन्दी चेतना' की अंतर्जाल पर सार्वजनिक घोषणा के साथ ही रचनाओं की भरमार लग जाती है । बहुत अच्छा लगता है, नए -नए रचनाकारों के बारे में जान कर ।

एक बात को नज़र-अन्दाज़ नहीं किया जा सकता कि कई रचनाकार अपनी रचना को ब्लाग पर छापने या उसे छपवाने की शीघ्रता और उत्सुकता में उसका नख- शिख नहीं सँवारते । इस के लिए समय और धैर्य की आवश्कता होती है । जिसकी कमी रचना को कमज़ोर बना देती है । कच्ची रचना ब्लाग या वेब पर डाल दी जाती है । और उन पर टिप्पणियाँ देने वालों की भरमार लग जाती है । रचनाकार सोचने लगता है कि वह बहुत अच्छा लिखता है और उसकी रचना उत्तम है । यहीं से आगे बढ़ने की संभावनाएँ कम हो जाती हैं ।

कुछेक नवोदित रचनाकारों को मैंने इसी ग़लतफ़हमी का शिकार देखा है, हालाँकि उनमें श्रेष्ठ सृजन की बहुत संभावनाएँ हैं । यह सब आप से इसलिए साझा कर रही हूँ कि टिप्पणियाँ उत्साहित ज़रूर करती हैं और लिखने की प्रेरणा भी देती हैं पर वे रचनाकार पर हावी नहीं होनी चाहिए ।

लेखन के लिए अनुशासन, धैर्य, निष्ठा, समर्पण और समय की आवश्कता है । लेखन तपस्या है, साधना है । साहित्यिक पृष्ठभूमि वाले मेरे परिवार में ये मूल बातें मन्त्रों के उच्चारण सी दोहराई जाती थीं और ये मेरे मन-मस्तिष्क पर छाई हुई हैं । आज भी मेरी कोई रचना छपती है तो एक वरिष्ठ कथाकार जो मेरे गुरु समान हैं, मेरी रचना पर कभी आलोचनात्मक और कभी समीक्षात्मक टिप्पणी ईमेल से भेज कर आगाह करते हैं कि प्रशंसा से प्रभावित नहीं होना और लेखन में एकाग्रचित्त रहना है ।

मित्रों ! सही कहते हैं गुरु समान वरिष्ठ कथाकार । इससे पहले कि प्रशंसा अहम् को बढ़ा कर एक जाल बुन दे और वह जाल अहम् से ही कसता चला जाए, इतना कस जाए कि उससे निकलना कठिन हो जाए, सतर्क हो जाना चाहिए ।

नव वर्ष की शुभकामनाओं के साथ...
आप की मित्र,

सुधा ओम ढींगरा

समय का पहिया हर पल गतिमान है एक अज्ञात से दूसरे अज्ञात की ओर, इस बीच जो कुछ है उसे जीवन कहते हैं और उस जीवन में क्षण, प्रहर, दिवस, माह, वर्ष सब व्यतीत होने के लिये आते हैं । जो नया है वो कल बीत चुका होगा तो आइये इस नये का स्वागत करें, इसे जिएँ, इससे पहले कि ये बीत जाए ।